पशुधन ज्ञान

संस्करण : प्रथम अंक : 1 जनवरी 2015 अर्धवार्षिक, हिसार शुल्क : 50/-

प्रकाशक:
विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
हिसार - 125004 (हरियाणा)

प्रकाशकः

डॉ. बी.एस. श्योकन्द,

निदेशक, विस्तार शिक्षा

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय,

हिसार–125 004 (हरियाणा)

सम्पादक :

डॉ. देवेन्द्र सिंह

सम्पादकीय मण्डल :

डॉ. नीता खन्ना

डॉ. नरेश जिन्दल

डॉ. विकास नेहरा

डॉ. राजेन्द्र यादव

मुद्रक :

डोरेक्स ऑफसैट प्रैस

डी.एन. कॉलेज रोड, हिसार

दूरभाष : 9896011117

प्रो. कप्तान सिंह सोलंकी
राज्यपाल
हरियाणा राजभवन, चण्डीगढ़

सन्देश

अति हर्ष का विषय है कि लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय 1 दिसम्बर, 2014 को 'पशुधन दिवस' तथा 'स्थापना दिवस' मना रहा है।

हमारे देश की अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतवर्ष में पशुधन में पिछले एक दशक में काफी बढ़ोतरी हुई है तथा पशुपालन व्यवसाय किसानों की आय अर्जित करने का मुख्य स्त्रोत बन गया है। इसलिए यह जरूरी है कि पशुओं को दिया जाने वाला आहार संतुलित हो और रख-रखाव भी अच्छा हो ताकि पशु स्वस्थ रह सकें और क्षमता के अनुसार उत्पाद की प्राप्ति हो सकें। विभिन्न बीमारियाँ, असंतुलित आहार आदि क्षमता के अनुसार उत्पाद लेने में रूकावट बनते हैं। इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि शोधकर्त्ताओं को पशुओं में हो रही विभिन्न समस्याओं के बारे में अवगत करवाया जाए।

इसी दिशा में लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय ने पशुधन दिवस के रूप में सराहनीय कदम उठाया है ताकि राज्य के पशु चिकित्सक अपनी समस्याओं को वैज्ञानिकों के साथ साँझा कर सकें। मैं आशा करता हूँ कि पशुपालक प्रदेश के सभी पशुपालक, पशु चिकित्सकों एवं विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में प्रगति करेंगे।

मैं विश्वविद्यालय को इसके स्थापना दिवस पर बधाई देता हूँ और 'पशुधन दिवस' के आयोजन की सफलता की कामना करता हूँ।

(प्रो. कप्तान सिंह सोलंकी)

मनोहर लाल
मुख्य मंत्री, हरियाणा
चण्डीगढ़

सत्यमेव जयते

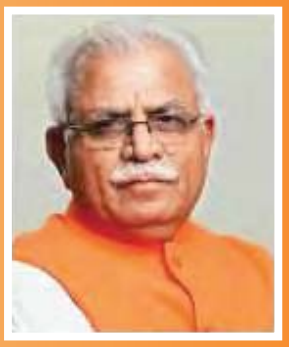

सन्देश

यह हर्ष का विषय है कि लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार अपना स्थापना दिवस 1 दिसम्बर, 2014 को 'पशुधन दिवस' के रूप में मना रहा है।

प्राचीनकाल से ही हमारे देश में पशुपालन को कृषि का अभिन्न अंग माना जाता रहा है। हरियाणा कृषि प्रधान राज्य होने के साथ-साथ देश का अग्रणी पशुपालक राज्य भी है। प्रदेश की मुर्राह भैंस ने पूरे विश्व में 'काला सोना' के नाम से ख्याति प्राप्त की है। भारत की सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान लगभग 14 प्रतिशत है जबकि कृषि उत्पादकता में पशुपालन का योगदान लगभग 35 प्रतिशत है। हरियाणा में प्रतिवर्ष 66.81 लाख टन दूध का उत्पादन होता है तथा 774 ग्राम दूध प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्ध है। इस उपलब्धि के लिए यहां के पशुपालक बधाई के पात्र हैं। यह उनकी मेहनत, जागरूकता और सर्तकता का नतीजा है कि आज हम इस मुकाम तक पहुंच पाए हैं। इस उपलब्धि के लिए पशुपालन एवं डेयरी विभाग तथा विश्वविधालय के वैज्ञानिक भी बधाई के पात्र हैं।

हरियाणा सरकार की नीतियां भी हमेशा पशुधन को बढ़ावा देने में अग्रणी रही हैं। प्रदेश में नवनिर्मित लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक अपने शोधकार्य एवं प्रसार कार्यक्रमों के द्वारा पशुपालकों को नवीनतम, आधुनिक एवं वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करने के लिए प्रयासरत हैं। हमें उम्मीद है कि वैज्ञानिकों द्वारा दी जा रही जानकारी को अपनाकर पशुपालक अधिक आय अर्जित कर सकते हैं। दुधारू पशु बीमा योजना, पशुओं का टीकाकरण, संक्रमण रोगों का निदान, नस्ल सुधार, संतुलित आहार, पशुजन्य उत्पादों को बढ़ावा देना आदि ऐसे प्राथमिक क्षेत्र हैं जिन पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैं इस बात की सराहना करता हूँ कि विश्वविद्यालय अनुसंधान और विस्तार के कार्यों को अत्यधिक उत्पादक और गुणवत्तापरक बनाने के लिए पशुधन दिवस के माध्यम से बुद्विजीवियों एवं पशुपालकों व किसानों को जोड़ने के लिए एक सिस्टम विकसित कर रहा है। मैं इस प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

(मनोहर लाल)

ओम प्रकाश धनखड़
मंत्री
कृषि, पशुपालन एवं डेयरी, मत्स्य पालन, विकास एवं पंचायत तथा सिंचाई विभाग, हरियाणा

सन्देश

यह हर्ष का विषय है कि लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय 1 दिसम्बर, 2014 को 'पशुधन दिवस' तथा 'स्थापना दिवस' मना रहा है। इस अवसर पर 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका भी प्रकाशित की जाएगी।

पशुपालन का आदिकाल से ही हरियाणवी सभ्यता में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। बढ़ती जनसंख्या के कारण प्रदेश में कृषि योग्य भूमि निरन्तर कम होती जा रही है। ऐसे में हरियाणा सरकार युवाओं को गांवों में ही खेती आधारित रोजगार उपलब्ध करवाने के लिए कृत संकल्प है।

मैं पत्रिका की निरंतर सफलता के लिए हार्दिक बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि यह पत्रिका हरियाणा के पशुपालकों को नवीनतम वैज्ञानिक जानकारियां देने में सहायक सिद्ध होगी।

मैं पत्रिका की पहली वर्षगांठ पर अपनी शुभकामनाएं भी प्रेषित करता हूँ।

(ओम प्रकाश धनखड़)

मेजर जनरल (डॉ.) श्रीकान्त
एस एम, वि एस एम (रिटायर्ड)
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सन्देश

हरियाणा राज्य देश के उन राज्यों में से एक है जहाँ कृषि व पशुपालन ग्रामीण क्षेत्रों का मुख्य व्यवसाय है। दिन-प्रतिदिन घटते हुए कृषि व्यवसाय के मद्देनज़र पशुपालन की ओर लोगों का रूझान काफी बढ़ रहा है। आज हरियाणा राज्य दुग्ध उत्पादन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। इसके साथ-साथ मांस उत्पादन, अण्डा उत्पादन, मछली पालन व इससे जुड़े हुए अन्य व्यवसायों में भी काफी वृद्धि हुई है। यह सब पशुपालकों की जागरूकता, मेहनत और लगन का ही परिणाम है। लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय भी इस दिशा में अहम् भूमिका निभा रहा है। विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में शोधकार्य में लगे हुए हैं। हमारा यह ध्येय है कि विश्वविद्यालय में हुए शोध को शिक्षा विस्तार के माध्यम से पशुपालकों तक पहुंचाया जाए ताकि पशुपालक नई जानकारियों से अपने पशुओं की गुणवत्ता और उत्पादन क्षमता को बढ़ा सकें। विश्वविद्यालय विभिन्न सरकारी विभागों, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थानों के साथ मिलकर डेयरी विकास, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, सुअर पालन व पशुचिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध है।

पशुधन एवं स्थापना दिवस पर विश्वविद्यालय पशु चिकित्सकों के लिए कार्यशाला आयोजित कर रहा है तथा किसानों के लिए हिन्दी में 'पशुधन ज्ञान' व 'प्राथमिक उपचार' पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कर रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इन पत्रिकाओं के माध्यम से किसान भाइयों एवं बहनों को पशुधन व्यवसाय से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए समय-समय पर नवीनतम एवं आधुनिक जानकारियाँ मिलती रहेंगी तथा पशुओं के प्राथमिक उपचार एवं रोगों के निदान में भी सहायता मिलेगी। मैं उम्मीद करता हूँ कि ये पत्रिकाएँ आने वाले समय में बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी। भाविष्य में यह विश्वविद्यालय चरणबद्ध तरीके से डेयरी टेक्नोलॉजी, मत्स्य पालन, पशु जैव प्रौद्योगिकी और पशुधन एवं ग्रामीण प्रबंधन आदि के अन्य विषयों में नए विद्यालयों की स्थापना करेगा जिनके द्वारा पशुधन क्षेत्र में और अधिक उन्नति के अवसर जागृत होंगे।

आइए! राष्ट्र और समाज निर्माण में बढ़-चढ़कर हिस्सा लें तथा मेरा विश्वास है कि महामहिम राज्यपाल एवं माननीय मुख्यमंत्री जी के मार्गदर्शन से और वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम से यह विश्वविद्यालय देश में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में अपनी एक अहम् पहचान बनाएगा।

शुभकामनाओं सहित।

(श्रीकांत शर्मा)

डॉ. महावीर सिंह, भा. प्रा. से.
प्रधान सचिव
पशुपालन एवं डेयरी विभाग
हरियाणा सरकार

सन्देश

यह मेरे लिए अति प्रसन्नता का विषय है कि लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय 1 दिसम्बर, 2014 को 'पशुधन दिवस' तथा 'स्थापना दिवस' मना रहा है तथा 'पशुधन ज्ञान' एवं 'प्राथमिक उपचार' के नाम से दो पत्रिकाओं का प्रकाशन करने जा रहा है जिससे किसान बहनों व भाइयों को समय-समय पर पशुधन विकास एवं प्रबंधन बारे उचित जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

पशुधन हमें खाद्य उत्पादों के अलावा रोज़गार तथा खेती के कार्यों के लिए ऊर्जा, खाद उपलब्ध करवाते हैं। हमारे देश में पशुधन क्षेत्र ने सकल घरेलू उत्पाद में 5.5 प्रतिशत का योगदान दिया है जो कि कृषि सकल घरेलू उत्पाद का 35 प्रतिशत है। दुग्ध उत्पादन का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में गेहूं, धान और गन्ना उत्पाद से ज्यादा हिस्सा है। हरियाणा पूरे भारतवर्ष में दुग्ध उत्पादन में अग्रणी राज्यों में से एक हैं। इसके अलावा मत्स्य पालन एवं मुर्गी पालन जैसे व्यवसाय भी हरियाणावासियों ने सफलतापूर्वक अपनाए हैं। कुल दूध उत्पादन का 84 प्रतिशत हमें भैंसों, 15 प्रतिशत गायों तथा 1 प्रतिशत बकरी से प्राप्त होता है। डेयरी क्षेत्र लगभग 1 करोड़ 80 लाख लोगों को रोज़गार दे रहा है, जिनमें 70 प्रतिशत महिलाएँ हैं। इसके बावजूद राज्य की बढ़ती जनसंख्या, खाद्य सुरक्षा, संतुलित आहार के प्रति जागरूकता को ध्यान में रखते हुए पशुपालन क्षेत्र को और भी बढ़ावा देने की जरूरत है। पशुपालन एवं डेयरी विभाग लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय के साथ कंधे से कंधा मिलाते हुए पशुपालकों के हित के लिए कार्यरत है। सरकार ने समय समय पर विभिन्न लाभकारी योजनाओं के द्वारा राज्य के पशुपालकों का हौसला बढ़ाने का कार्य किया है। मैं आशा करता हूं कि यह आयोजन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों, पशुचिकित्सकों एवं किसानों के बीच विचारों के आदान-प्रदान के लिए काफी अहम् साबित होगा। मैं विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों की समर्पित टीम को इस पहल के लिए बधाई देता हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

(डॉ. महावीर सिंह)

डॉ. जी. एस. जाखड़
महानिदेशक
पशुपालन एवं डेयरी विभाग, हरियाणा

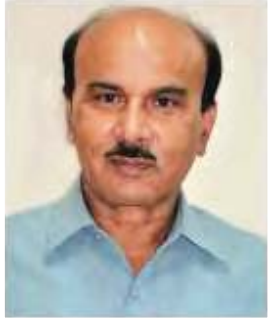

सन्देश

हरियाणा प्रान्त के अस्तित्व में आने के बाद यहाँ कृषि से सबंधित सभी क्षेत्रों में चहुँमुखी विकास हुआ है। सत्तर के दशक एवं उसके उपरान्त देश में हरित व श्वेत क्रान्ति लाने में हरियाणा प्रदेश का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज के परिपेक्ष्य में प्रदेश के किसानों के पास घटती जोत एवं बदलती पर्यावरण परिस्थितियों के कारण पशुपालन व्यवसाय और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। कृषि विविधीकरण में पशुपालन एक अति महत्वपूर्ण विकल्प है। प्रदेश के लगभग बाईस लाख परिवार पशुपालन व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। हरियाणा प्रान्त में गाय व भैंस प्रजाति के उन्नासी लाख पशु हैं और राज्य का कुल दूध उत्पादन 66.81 लाख टन हो गया है जिसके परिणामस्वरूप प्रदेश में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दुग्ध उपलब्धता 773 ग्राम तक पहुँच गई है जो कि राष्ट्रीय स्तर पर दुग्ध उपलब्धता की दोगुनी से अधिक है। राज्य को विश्वप्रसिद्ध भैंस की 'मुर्राह' नस्ल तथा गाय की द्विप्रयोजिनी 'हरियाणा' नस्ल का मूल स्थान होने का गौरव प्राप्त है।

प्रदेश पशुधन के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति कर रहा है तथा पशुधन क्षेत्र में शिक्षा एवं शोध कार्य में गुणात्मक विकास के लिए राज्य सरकार ने हिसार में लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की स्थापना की है। यह विश्वविद्यालय नवीन शोधों के माध्यम से पशुपालकों को नयी तकनीक एवं विकास का मार्ग प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण योगदान करेगा। मुझे अत्यन्त हर्ष है कि विश्वविद्यालय 1 दिसम्बर, 2014 को 'पशुधन दिवस' एवं 'विश्वविद्यालय स्थापना दिवस' के रूप में मना रहा है। इस अवसर पर विश्वविद्यालय द्वारा पशुपालन विभाग के साथ मिलकर दो दिवसीय पशुचिकित्सकों के लिए तकनीकी कार्यशाला का आयोजन भी किया जा रहा है जिससे विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों और राज्य के पशुचिकित्सकों के मध्य नए शोधों के बारे में सूचनाओं का आदान-प्रदान होगा और पशुचिकित्सकों के माध्यम से नए शोधों एवं तकनीक का प्रसार और लाभ किसानों तक पहुंचेगा। इस अवसर पर विश्वविद्यालय किसानों के लिए हिन्दी में 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का प्रकाशन भी आरम्भ कर रहा है जिसके माध्यम से पशुपालकों को समय-समय पर आधुनिक एवं वैज्ञानिक जानकारियां प्राप्त होती रहेंगी ।

इस अवसर पर मैं पशुपालन विभाग की ओर से विश्वविद्यालय प्रशासन को हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(जी. एस. जाखड़)

सम्पादकीय

प्राचीनकाल से ही हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा कृषि पर निर्भर रहा है, परन्तु अब बदलते परिवेश जैसे जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि में प्रतिवर्ष कटोती हो रही है तथा भूमि की कृषि क्षमता भी कम है। अत: पशुपालन, कृषि से जुड़ा एक ऐसा व्यवसाय है, जिस पर और अधिक ध्यान देने से किसानों की आर्थिक दशा को सुधारा जा सकता है।

पशुपालन का प्रदेश और राष्ट्र के विकास में अति महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है तथा भारतवर्ष की अधिकतर महिलायें पशुपालन का कार्य आने घर-परिसर में रहते हुए कर सकती हैं। मुर्गीपालन व्यवसाय का भी हरियाणा राज्य में काफी प्रचलन है, जिससे किसानों का आर्थिक विकास हुआ है तथा यह बेरोजगार युवकों के लिए एक अच्छा व्यवसाय साबित हो रहा है। पशुधन से उच्चतर उत्पादों की प्राप्ति के लिए संतुलित आहार, नस्ल सुधार, बेहतर स्वास्थ्य तथा बिमारियों का नवीनतम तकनीक द्वारा निदान और इलाज होना ऐसे प्राथमिक विषय हैं जिनकी जानकारी पशुपालकों तक समय-समय पर पहुंचाना अति आवश्यक है। नवगठित लाला लाजपत पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय का विस्तार शिक्षा निदेशालय इस विषय में अपने कर्त्तव्य का बखूबी निर्वहन कर रहा है। विश्वभर में 'काला सोना' नाम से विख्यात मुर्राह नस्ल की भैंस के संरक्षण तथा विकास को नई दिशा देने के लिए निरंतर पशुपालकों को विभिन्न प्रशिक्षणों के माध्यम से यह निदेशालय जानकारियाँ प्राप्त करवा रहा है। पशुपालकों को पशुधन संबंधित जानकारियाँ देने के लिए विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय ने नि:शुल्क दूरभाष सेवा का प्रसार इतना कर दिया है कि प्रदेश के कोने-कोने से पशुपालक बहन और भाई अपने पशुधन संबंधित किसी भी समस्या के लिए घर बैठे ही समाधान करवाने में कामयाब हो रहे हैं तथा इस पहल के लिए मैं विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों और विस्तार शिक्षा कार्यकर्ताओं का तहेदिल से धन्यवाद करता हूँ।

भविष्य की जरूरतों एवं विश्व में विकास के दृष्टिकोण से हमारे देश ने अभी काफी सफर तय करना है। हम सभी यह चाहते हैं कि हमारा प्रदेश पशुपालन, मुर्गीपालन एवं मत्स्य पालन के क्षेत्र में अत्यधिक विकास कार्य करते हुए समूचे देश के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे। यह विश्वविद्यालय हमारे कर्मठ कुलपति मेजर जनरल (डॉ.) श्रीकान्त, एस एम, वि एस एम के मार्गदर्शन में इन सभी क्षेत्रों में विकास के लिए नई खोज एवं पशुपालकों/किसानों के लिए विशेष कार्यक्रम की दिशा में निरन्तर अग्रसर हैं, जिससे हमारे पशुपालक भाइयों को भरपूर लाभ प्राप्त हो सकेगा।

इसी कड़ी में 1 दिसम्बर, 2014 को विश्वविद्यालय 'पशुधन दिवस' तथा 'स्थापना दिवस' के रूप में मनाने के साथ-साथ पशु चिकित्सों के लिए कार्यशाला का भी आयोजन करने जा रहा है। यह कार्यशाला किसानों/पशुपालकों, पशु चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों के बीच पशुधन संबंधित समस्याओं के आदान-प्रदान का एक महत्त्वपूर्ण मंच साबित होगा। मुझे इस बात की भी हार्दिक प्रसन्नता है कि इस सुअवसर पर विश्वविद्यालय पशुपालकों के लिए 'पशुधन ज्ञान' तथा 'प्राथमिक उपचार' पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रहा है जिनके द्वारा समय-समय पर पशुपालकों को पशुधन संबंधित नवीनतम जानकारियाँ प्राप्त हो सकेंगी। इस अवसर पर मैं विश्वविद्यालय के कुलपति मेजर जनरल (डॉ.) श्रीकान्त, एस एम, वि एस एम के कर्मठ नेतृत्व तथा विश्वविद्यालय के अधिकारियों, संकायों, वैज्ञानिकों, विस्तार शिक्षा कार्यकर्ताओं, गैर संकायों, विद्यार्थियों, पशुचिकित्सकों और हरियाणा प्रदेश के पशुपालकों का इस आयोजन को सफल बनाने में योगदान देने के लिए धन्यवाद देता हूँ और सबका स्वागत करता हूँ।

धन्यवाद सहित।

(बी. एस. श्योकन्द)
निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	पशुओं में गलघोटू रोग	1
2.	स्वच्छ दुग्ध उत्पादन	3
3.	दुधारू पशुओं में गर्मी जाँचने के आसान व सरल उपाय	6
4.	दुधारू पशुओं में गर्भपात के कारण, लक्षण व बचाव	9
5.	प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं में पशु आहार का महत्त्व	11
6.	मुर्गियों के फीड में हार्मोन क्यों न दें?	13
7.	गाय में गर्भकाल के दौरान होने वाली समस्याएँ	15
8.	पशुओं में मुँह व खुर रोग : पशुपालक की भूमिका	18
9.	पशुओं के बाह्य परजीवी एवं उपचार	20
10.	बरसात के मौसम में पशुओं में होने वाले रोग व बचाव	24
11.	पशुओं में गर्भावस्था व दवाइयों का प्रयोग	26
12.	चूजों की देखभाल एवं प्रबन्धन	28
13.	कटड़े–कटड़ियों में मृत्यु दर कम करने के उपाय	30
14.	मुर्गीपालन में जैव सुरक्षा (Bio-Security)	32
15.	दुधारू पशुओं में ब्याते ही या कुछ दिन बाद पक्षाघात (मिल्क–फिवर) : क्या करें क्या ना करें?	36
16.	मुर्गी पालन व्यवसाय में रोग नियन्त्रण प्रबंधन	37
17.	पशुओं में प्राथमिक एवं घरेलू उपचार	39
18.	दुधारू पशुओं में थनैला रोग, उपचार एवं रोकथाम	41
19.	पशुओं में टिटेनस या धनुस्तंभ	43
20.	हिमीकृत वीर्य का वितरण एवं रख–रखाव	45

पशुओं में गलघोटू रोग

राजेन्द्र यादव, रिक्की झांभ, अशोक कुमार एवं प्रवीण गोयल
पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

गलघोटू अथवा रक्तस्त्रावी पूयरक्तता पशुओं में होने वाला अति संक्रामक जीवाणु जनित रोग है। यह रोग मुख्यतः गाय, भैंस, ऊंट, भेड़, बकरी एवं सुअर में पाया जाता है, परन्तु भैंसों में यह रोग सबसे अधिक संक्रामक एवं नुकसानदायक होता है। यह रोग प्रायः निचली भूमि के आर्द्रता वाले क्षेत्रों में होता है। बारिश के मौसम में यह रोग अधिक होता है।

कारण

गलघोटू रोग पाश्चुरेला मल्टोसिडा नामक जीवाणु से होता है जो कि पशुओं के श्वसन तंत्र में सामान्य रूप से पाया जाता हैं। जैसे ही पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है (अत्याधिक कार्य की थकान का तनाव, पोषण की कमी, विपरीत वातावरण, लम्बी दूरी तक पशु का स्थानांतरण इत्यादि) यह रोग पनप उठता है।

फैलाव

यह पशुओं में होने वाली एक छूत की बीमारी है। स्वस्थ पशु का रोगी पशु के संपर्क में आना व रोगी पशु द्वारा पीने के पानी, सुखी घास या चारागाह दूषित करना रोग फैलने के मुख्य तरीके हैं। इसके अतिरिक्त रोगी पशु का मेले में जाना, विभिन्न गांवों के पशुओं का एक चारागाह पर मिलना आदि भी इस रोग को फैलाने के कारणों में से हैं।

लक्षण

रोग के जीवाणु के पशु शरीर में प्रवेश करने के 2–5 दिन के भीतर पशु को तेज बुखार आता है जो कि 104–107° फोरनहाईट तक हो सकता है। पशु को सांस लेने में कठिनाई होना, गले में घुड़–घुड़ की आवाज आना, मुँह से लार गिरना, नाक से बलगम आना एवं आंखों से पानी आना भी इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। इसके साथ इस रोग में गले, गर्दन, डयूलेप (हीक) एवं जीभ में भी सूजन आ जाती है। पशु खाना–पीना बंद कर देता है। इसके अतिरिक्त आंखें लाल हो जाना, दूधारू पशुओं का दूध ना देना, शरीर में कंपकंपी, पेट दर्द एवं दस्त लग जाना आदि लक्षण भी पाए जाते हैं। भेड़–बकरियों में उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त लंगड़ा कर चलना भी प्रायः पाया जाता है।

ईलाज

यदि रोग का ईलाज उचित समय पर नहीं किया जाता है तो 20–24 घंटे में पशु की मृत्यु हो जातीी है। अतः पशुपालकों को चाहिए कि पशु में गलघोटू रोग के लक्षण दिखाई देते ही तुरंत नजदीकी पशु चिकित्सक से रोगी पशु का उचित एवं पूरा ईलाज करवाएं। पशुपालकों को चाहिए कि वे किसी भी झोला छाप डॉक्टर या झाड़–फूंक के चक्कर में ना पड़ें, अन्यथा यह रोग महामारी का रूप भी ले सकता है तथा एक से अधिक पशुओं में फैलकर उनकी मृत्यु का कारण बन सकता है।

बचाव एवं रोकथाम

गलघोंटू रोग से बचाव एवं रोकथाम के लिए पशुपालकों को निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिएं :–

1. रोगी पशु को स्वस्थ पशु से अलग रखना चाहिए एवं पशु चिकित्सक से पूरा ईलाज करवाना चाहिए।
2. रोगी पशु के खाने–पीने का प्रबंध भी अन्य पशुओं से अलग करना चाहिए।
3. रोगी पशुओं के काम आने वाली कोई भी वस्तु अन्य पशुओं के लिए इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए।
4. यदि रोगी पशु की मृत्यु हो जाती है तो शव को मृत पशु के बचे हुए चारे एवं अन्य सामान के साथ जमीन में गहरा गड्ढा खोदकर दबा देना चाहिए। मिट्टी डालने से पूर्व शव के ऊपर चूना अवश्य डालें तथा उसके रहने के स्थान को फिनाइल या लाल दवाई जैसे कीटाणुनाशकों से अवश्य धो लें।

5. यदि किसी क्षेत्र में गलघोटू के लक्षण पशुओं में दिखाई दें तो उस क्षेत्र में एवं आसपास पशु मेले, पशु शिविर एवं प्रदर्शनी का आयोजन नहीं करना चाहिए।
6. पशुपालकों को चाहिए कि विपरीत वातावरणीय परिस्थितियों में पशुओं को लम्बी दूरी तक स्थानांतरित ना करें।
7. पशुपालकों को चाहिए कि वे पशुओं को संतुलित एवं पूरी मात्रा में आहार प्रदान करें जिससे कि पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बनी रहे।
8. उपरोक्त सभी सावधानियों के अतिरिक्त पशुपालकों के लिए आवश्यक है कि सभी पशुओं को गलघोटू निरोधक टीका लगवाएं। यह टीकाकरण पशुपालन विभाग, हरियाणा सरकार द्वारा साल में दो बार लगाया जाता है। वैसे तो यह टीका साल के किसी भी समय लगवाया जा सकता है, परंतु वर्षा ऋतु के प्रारंभ होने के एक माह पहले जरूर लगवाना चाहिए। यह टीका 5 मी.ली. मात्रा में चमड़ी के नीचे लगाया जाता है। टीकाकरण के 2–3 सप्ताह पश्चात पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता पूरी तरह बन जाती है जो कि 6 माह तक रहती है। अतः वर्ष में दो बार टीकाकरण करवाने की सलाह दी जाती है।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन

देवेन्द्र सिंह[1], सुजोय खन्ना[2], विशाल शर्मा[2] एवं तेज प्रकाश[3]
[1]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग, [2]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग
[3]पशु शरीर रचना विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

स्वच्छ दूध उत्पादन क्यों करें?

1. कम जीवाणुओं वाला दूध प्राप्त करने हेतू
2. अस्वच्छ दूध से फैलने वाली बिमारियों की रोकथाम हेतू
3. बढ़िया गुणवत्ता व अच्छे रख–रखाव/ज्यादा देर तक अच्छा रहने वाले दूध–उत्पादन हेतू
4. दूध का बाजार–मूल्य बढ़ाने हेतू
5. अच्छी डेयरियों या कंपनियो में दूध देने हेतू
6. अन्ततः ज्यादा मुनाफे हेतू

दूध अस्वच्छता के स्त्रोत

(क) आंतरिक

- थन (थनैला रोग से ग्रसित)
- दूध की शुरूआती धारें

(ख) बाह्य स्त्रोत

- पशु स्वयं/पशु की त्वचा/थन
- दूध निकालने वाला
- बर्तन
- दुग्धशाला (पर्यावरण)
- दूध दोहने का तरीका
- चारा, पानी इत्यादि

स्वच्छ दूध उत्पादन का महत्त्व

- डेयरी फार्म पर दूध उत्पादन एक प्रमुख प्रक्रिया है जिस पर डेयरी फार्म का मुनाफा निर्भर करता है।
- डेयरी फार्म में स्थित दुग्ध दूहनशाला में नियमित साफ सफाई रखने से एक तो पशुओं की लेवटी (थन) स्वस्थ रहती है और दूसरा उससे प्राप्त दूध भी काफी लंबे समय तक पौष्टिक व उपयोग योग्य रहता है।
- स्वच्छ दूध उत्पादन के तीन मुख्य नियंत्रण–बिन्दु (Check-Points) होते हैं।

1. पशु से संबधित (पशु की साफ–सफाई, विशेषकर थनों की)
2. दुध–दोहने वाले व्यक्ति से संबधित (दूध–दोहने की प्रक्रिया, हाथों की साफ–सफाई व व्यक्तिगत शुचिता/साफ–सफाई)
3. पर्यावरण सम्बन्धी–पशु–बाड़े/दुग्धशाला की साफ–सफाई, दूध के बर्तनों की साफ–सफाई, पशु के बैठने वाले स्थान की स्वच्छता, दुहन–समय पर दिए जाने वाला भोजन/चारा।

- इसलिए डेयरी मालिकों (दूध दूहने वालों) को स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए निम्नलिखित दिशा निर्देशों का पालन करना चाहिए।

1 पशु शेड की सफाई

- फर्श अभेद्य और फिसलन रहित होना चाहिए।
- दूध दुहनशाला को प्रत्येक दुहन (सुबह–शाम) के बाद अच्छी तरह से धोना व सुखाना चाहिए ताकि दुहनशाला साफ और शुष्क रहे।

2 पशुओं की सफाई

- पशुओं के स्वास्थ्य की नियमित रूप से जाँच की जानी चाहिए।
- स्वस्थ पशुओं की दूध दुहन प्रक्रिया, रोगी पशुओं से पहले की जानी चाहिए ताकि स्वस्थ्य पशु रोगग्रस्त ना हो जाएं।
- पशुओं के पिछले हिस्से व जांघों पर यदि काफी मात्रा में मिट्टी व गोबर लगा हुआ है तो इसे ब्रश से साफ करके पानी से धोना चाहिए।
- दूध दूहने से पहले ऐंटीसेप्टिक घोल में निचोड़े हुए

कपड़े से थनों को पोंछना चाहिए या इसी घोल से थनों को धो लें।

3 दोहक व दूध के बर्तनों की सफाई

- दोहक को साफ–सुथरे कपड़े पहनने चाहिए और अपने सिर को उपयुक्त टोपी/कपड़े से ढकना चाहिए ताकि सिर के बाल दूध में ना गिरें।
- दोहक के नाखून अच्छी तरह से कटे होने चाहिएं तथा प्रत्येक दुहन के बाद हाथों को ऐंटीसेप्टिक घोल से साफ करना चाहिए।
- बीमार और गंदी आदतों (जैसेः इधर–उधर थूकना, नाक बनाना) वाले दोहकों को काम पर नहीं रखना चाहिए।
- प्रत्येक दोहन के बाद दूध के बर्तनों (पात्रों) को पहले गर्म पानी से धोना चाहिए तथा फिर उपयुक्त सेनीटाइजर (प्रक्षालक) से अच्छी तरह से रगड़ने के बाद ठंडे पानी से धोना चाहिए।
- दूध को एक बर्तन से दूसरे बर्तन में डालते समय सदा छालनी का इस्तेमाल करना चाहिए।
- प्रत्येक थन से दूध की शुरूआती कुछ धार एक स्ट्रिप–कप में इकट्ठा कर लेनी चाहिए ताकि दूध को थनैला बिमारी के लिए जाँच किया जा सके।

दूध की गुणवत्ता का परीक्षण

- दूध हमारे आहार का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। मनुष्य सेवन के लिए प्रयोग होने वाले दूध की क्वालिटी के लिए कुछ मानक (स्टैंडर्ड) बनाए गए हैं।
- इनके अनुसार गाय के दूध में 3.5 प्रतिशत वसा (फैट) व 8.5 प्रतिशत एस.एन.एफ. (S.N.F) तथा भैंस के दूध में 5 प्रतिशत वसा (फैट) व 9 प्रतिशत एस.एन.एफ. होना चाहिए।
- दूध की क्वालिटी को चैक करने के लिए दूध संग्रह केन्द्रों पर निम्नलिखित परीक्षण (टेस्ट) करने चाहिएं।

(क) रंग, स्वाद व गंध (लपट) के लिए टेस्ट

रंग

- दूध में किसी भी अन्य पदार्थ की मिलावट से रंग बदल जाता है।
- मनुष्य उपयोग के लिए असामान्य रंग का दूध उपयुक्त नहीं होता है।

स्वाद

- दूध का स्वाद सामान्य होना चाहिए। कड़वा या खट्टे स्वाद (फटा हुआ) का दूध आमतौर पर हमें नहीं उपयोग करना चाहिए।

गंध (लपट)

- दूध की गंध सामान्य होनी चाहिए।

(ख) दूध में वसा (फैट) की मात्रा का परीक्षण

- दूध में वसा की मात्रा का परीक्षण दूध के संग्रह के दौरान किया जाता है।
- सामान्यतः गार्बर विधि से वसा (फैट) की मात्रा का परीक्षण करने को पारम्परिक विधि माना जाता है, लेकिन हाल ही में इलेक्ट्रॉनिक दूध परीक्षक (टेस्टर) का प्रयोग देश के कई हिस्सों में किया जा रहा है।
- वसा (फैट) के अलावा दूध में मौजूद शेष घटकों को संयुक्त रूप से एस.एन.एफ. कहा जाता है और इसका निर्धारण लेक्टोमीटर से किया जाता है।

दूध में वसा और एस.एन.एफ. के उतार चढ़ाव के कारण

नस्ल प्रकार

- दूध में वसा और एस.एन.एफ. की मात्रा जानवर की उम्र से विलोम या प्रतीत रूप से संबंध रखते है।
- जानवर का किसी भी प्रकार की बीमारी से पीड़ित होना या भयभित होना दूध में वसा की मात्रा को कम करता है।
- दूध में वसा की मात्रा ब्यांत के 15 दिनों बाद से लेकर 9 महिनों तक बढ़ती रहती है।
- मामूली व्यायाम के बाद भी वसा की मात्रा बढ़ जाती है।

उत्पादकों के लिए लाभकारी मूल्य प्राप्त करने के लिए

- दूध में किसी भी प्रकार की मिलावट कभी नहीं करनी चाहिए।
- दूध की मात्रा के मापन के दौरान गलत प्रक्रिया का पालन करने वाली संस्थाओं को दूध ही नहीं देना चाहिए।

- दूध में मौजूद वसा की मात्रा के अनुसार भुगतान करने वाली संस्था को ही दूध की आपूर्ति करनी चाहिए।

दूध उत्पादन का अर्थशास्त्र

- एक डेयरी उद्यम की लाभप्रदता दूध उत्पादन की लागत और दूध के बिक्री मूल्य पर निर्भर करती है।
- हालांकि उत्पादक का दूध की कीमत पर कोई नियंत्रण नही है लेकिन वह दूध उत्पादन की लागत पर नियंत्रण रख सकता है।

दूध उत्पादन की लागत को कम करने के हेतू

- अपनी जमीन पर हरे चारे की खेती से काफी हद तक दूध उत्पादन की लागत कम की जा सकती है।
- डेयरी संचालन के विभिन्न कार्यों के लिए बाहर की लेबर की बजाय परिवार के लोगों का योगदान को बढ़ावा देना चाहिए।
- ब्यांत का हरे चारे की उपलब्धता की अवधि से मेल होना चाहिए।
- चौथे या पाँचवे ब्यांत में जो पशु है, उनके पालन पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।
- हरे चारे, खल बिनौले, अनाज और दवाओं में होने वाले बिना वजह के खर्चों पर काबू रखें।

विभिन्न प्रकार के दूध की संरचना (बनावट)

दूध में क्या होता है ?

- दूध में मुख्य रूप से वसा और ठोस (एस.एन.एफ.) शामिल है। ठोस में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन, खनिज आदि शामिल होते हैं। दूध एक बहुत ही पौष्टिक अहार है जो शरीर के लिए बहुत आवश्यक है। दूध के वसा और एस.एन.एफ. की मात्रा नियमानुसार नीचे दी गयी है :

क्र.स.	दूध के प्रकार	वसा (न्यूनतम %)	एस.एन.एफ. (न्यूनतम %)
1.	भैंस का दूध	6.0	9.0
2.	गाय का दूध	3.5	8.5
3.	मिश्रित दूध	4.5	8.5
4.	फुल क्रीम दूध	6.0	9.0
5.	S.T.D.	4.5	8.5
6.	भेड़ का दूध (Tonned)	3.0	8.5
7.	भेड़ डबल दूध (Tonned)	1.5	9.0
8.	स्कीमड दूध	0.5	8.7

दूध में मिलावट करने की वजह

- दूध में प्राकृतिक रूप से उच्च क्वालिटी के पोषक तत्त्व होते हैं। इसी वजह से लोग दूध में कम क्वालिटी वाली अन्य खाद्य वस्तुओं की मिलावट करके अधिक पैसा कमाने का प्रयास करते हैं।

मिलावट के उदाहरण

- डालडा, रिफाईन्ड और वनस्पति तेल–फैट की मात्रा को बढ़ाने के लिए डालते हैं।
- चीनी, मैदा, आटा, यूरिया, नमक आदि– एस.एन.एफ. बढ़ाने के लिए डालते हैं।
- दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए दूध में पानी मिलाया जाता है।
- दूध से फैट/वसा निकालना।

दूध के गुणवत्ता बनाए रखने के लिए उपाय

- किसान को साफ–सुथरी परिस्थितियों में दूध का उत्पादन करना चाहिए।
- दूध के उत्पादन के लिए स्वच्छ बर्तन का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
- दूध को जल्द से जल्द 5° सेल्सियस तक ठंडा किया जाना चाहिए।
- इस तरह ठंडे दूध को प्रसंस्करण (PROCESSING) के लिए भेज दिया जाना चाहिए।
- इसके बाद दूध को पाश्च्यूरीकृत (PASTURISED) करके ठंडा किया जाना चाहिए।
- ऐसे दूध को पैक कर उपभोक्ता के लिए भेज देना चाहिए।
- ऊपर दिए कदम उठाने से दूध संक्रमणमुक्त, स्वच्छ और पौष्टिक हो जाएगा।

दुधारू पशुओं मे गर्मी जाँचने के आसान व सरल उपाय

गौरव गुप्ता[1], देवेन्द्र सिंह[2], सुजोय खन्ना[3], देवेन अरोड़ा[2] एवं अमित कुमार[4]
[1]पशु भैशज्य एवं विष विज्ञान विभाग, [2]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग,
[3]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग,[4]पशु चिकित्सक, यमुनानगर
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

हमारे देश की अर्थव्यवस्था में पशुपालन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान है। यहा पशुपालन लघु, सीमान्त तथा भूमिहीन किसानों की जीविका का प्रमुख साधन है। आज हमारा देश दुग्ध उत्पादन में सबसे आगे है, किसानों ने पशुपालन की वैज्ञानिक विधियाँ अपनाकर श्वेत क्राँति का मार्ग दिखाया है, यद्यपि इस क्षेत्र को अधिक प्रगति की आवश्यकता है। हमारे देश में गोवंशी या डेयरी पशुओं (गाय एवं भैसों) की संख्या बहुत ज्यादा है, लेकिन उनकी उत्पादन व प्रजनन क्षमता कम है। इसके लिए काफी हद तक पशुपालकों में ज्ञान की कमी व समुचित जानकारी न होने के कारण पशुपालकों का एक बड़ा वर्ग पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं से जूझता रहता है। चूंकि प्रजनन की क्षमता तथा दर आर्थिक उत्पादन की इकाई होती है। अतः सभी प्रकार के दूधारू पशुओं के प्रजनन में होने वाली कठिनाइयों पर अध्ययन करना आर्थिक रूप से विशेष महत्त्व रखता है।

पशुपालकों को गोवंशी पशुओ में ऋतुकाल (गर्मी) के लक्षणों की सही पहचान नहीं होती है, जिसकी वजह से पशुपालन व्यवसाय का फायदा कम होता जाता है।

यदि पशुपालकों को गोवंशी पशुओं के ऋतुकाल सम्बन्धी तकनीकी जानकारी प्राप्त हो तो यह उनके लिए बहुत लाभकारी होगा। ऋतुकाल वह समय होता है जब पशु कामोत्तेजित होता है व मैथुन के लिए तैयार होता है। हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि 80 प्रतिशत पशु ब्याने के 60 दिन तक गर्मी में आ जाएं। हर 13–14 महीने बाद बच्चा प्राप्त करने का लक्ष्य पाने के लिए पशु के ब्याने के 50 दिन के भीतर में ही गर्भाधान कराना आवश्यक है या प्रसव के बाद 90 दिन के भीतर ही गर्भ धारण हो जाना चाहिए। अगर पशु ब्याने के 3–4 महीने तक गर्भ धारण नहीं करता, तो वह पशुपालक के लिए आर्थिक परेशानी का कारण बन जाता है क्योंकि ऐसा पशु सही मायनों में फीड व रखरखाव का खर्चा भी पूरा नहीं करता। पशु के सही समय पर गर्भ धारण के लिए जरूरी है, पशु की गर्मी के उचित समय पर उसका गर्भाधान कराया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि पशुपालकों को पशुओं को ऋतुकाल या गर्मी के लक्षणों की उचित पहचान हो।

गर्मी की पहचान करने में आने वाली त्रुटियाँ

1. पशुपालक द्वारा गर्मी की पहचान ना कर पाना। इस गलती की वजह से पशु स्वस्थ होते हुए भी कई बार गर्भधारण नहीं कर पाते।
2. पशुपालक द्वारा पशु का गलत समय पर गर्भाधान कराना। पशुपालन अल्पज्ञान की वजह से पशु के गर्भाधान के सही समय की जगह पर थोड़ा आगे या थोड़ा बाद में होने की वजह से झुंड का कन्सैप्शन रेट घट जाता है क्योंकि जिन पशुओं में सही समय पर गर्भाधान नहीं हुआ, उनके ग्याभन ठहरने की सम्भावना कम होती है।
3. कई बार पशुपालक द्वारा पशु की सही पहचान ना होने पर गलत पशु का गर्भाधान भी करा देता है।

पशु के ऋतुकाल या गर्मी को ना पहचानने के मुख्य कारण

1. पशुओं को देखने के लिए कम समय देना।
2. पशुपालक द्वारा गर्मी के लक्षण ना देख पाना।
3. पशुपालक द्वारा अन्य गतिविधियों में ज्यादा ध्यान देना।
4. पशु द्वारा गर्मी के लक्षण रात को या जल्दी सुबह को दिखाना। जैसे कि कुछ पशु दूसरे पशुओं पर चढ़ने की ज्यादातर क्रिया रात के समय करते हैं।
5. ज्यादा तापमान के कारण भी पशु कम लक्षण दिखाते हैं।

6. कुछ पशुओं में नैसर्गिक तौर पर गर्मी का समय बहुत छोटा होता है।
7. जिन पशुओं के पैरों में दिक्कत होती है, उनके लक्षण भी साफ दिखाई नहीं देते।
8. पशु बाड़े के फर्श का चिकना होना।
9. अगर पशु दूध देने के चरम पर है, तब भी वह गर्मी के लक्षण कम ही दिखाता है।
10. अधिक भीड़ होने पर भी पशु कम लक्षण दिखाता है।

- गर्माने के निम्नलिखित उपायों को अपनाने से दूधारू पशुओ में गर्भधारण का प्रतिशत बढाया जा सकता है।

पशुपालक कारक

- सफल पशुपालक को पशु की गर्मी के लक्ष्ण पहचानने का ज्ञान होना आवश्यक है। पशु गर्मी में आने पर प्राथमिक व सैकेंडरी दो प्रकार के लक्षण दिखाता है।

गर्माने के प्राथमिक लक्ष्ण

- सबसे आसानी से नजर आने वाला लक्षण है पशु द्वारा दूसरे पशु पर चढ़ना। (Mounting heat)
- दूसरे पशु के ऊपर चढ़ने पर शांत खड़े रहना। इस अवस्था को ''स्टैडिंग हिट'' कहते हैं। यह अवस्था गर्भाधारण के लिए सबसे उपयुक्त समय होता है।
- सामान्यतः यह अवस्था 15–18 घंटे की होती है, परन्तु 8 से 30 घंटे तक की भी हो सकती है।

गर्माने के सैकेंडरी लक्षण

- गर्भाधान के लिए सैकेंडरी लक्ष्णों पर आश्रित होने पर गलती होने की संभावना ज्यादा होती है क्योंकि ये लक्षण कई पशुओं में गौण भी होते हैं और कई पशु इन्हें खुलकर नहीं दर्शाते। सैकेंडरी लक्षणों को पहचानने के लिए पशुपालक को हर पशु को नजदीक से देखने की जरूरत पड़ती है।

सैकेंडरी लक्षण निम्नलिखित हैं–

- सामान्य से ज्यादा बैचेनी व ज्यादा चलना–फिरना।
- सामान्य से ज्यादा आवाज निकालना।
- नर पशु या सांड़ की तरफ ज्यादा आकर्षित होना।
- बार–बार थोड़ा–थोड़ा पेशाब करना।
- दूसरे मादा पशुओं के जननांगो को सूंघना।
- पशु के बाहरी जननांगो में सूजन व गीलापन होना। बाहरी जननांगो (Vulvar lips) का चिकना व झूरी रहित होना।
- बाहरी जननांगों से पारदर्शी जेरे (Mucus) का लटकना या पूंछ को लगा होना। पशु के गर्मी में आने पर यह पारदर्शी जेरा Cervix में बनता है और योनि में इकट्ठा होता है।
- पशु द्वारा कम खाना भी गर्भाने का लक्षण है।
- 5–10 प्रतिशत दूग्ध उत्पादन में गिरावट।
- योनि से रक्त रंचित म्यूक्स का आना बताता है कि पशु 3–4 दिन पहले गर्मी में आया था व पशु–पालक को अगली गर्मी के लिए 15–20 दिन इंतजार करना पड़ेगा।
- इन लक्षणों को पहचानने के लिए पशुपालकों को मादा पशुओं के झुंड पर निगरानी रखनी चहिए। हर झुंड पर एक व्यक्ति ऐसा हो जिसकी जिम्मेदारी इन लक्षणों को पहचानने की हो और इस व्यक्ति को फार्म के दूसरे कामों की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए। 60 प्रतिशत पशु रात को या जल्दी सुबह गर्मी में आते हैं व 70 प्रतिशत पशु दूसरे पशुओं पर चढ़ने की 70 प्रतिशत क्रिया रात के समय करते हैं। इसलिए झुंड में गर्मी के लक्षणों की जाँच दिन में कम से कम दो बार यानि एक जल्दी सुबह व दूसरी रात के समय होनी चाहिए। कुछ पशुओं की गर्माने की अवस्था 8 घंटे जितने कम समय की भी हो सकती है। ऐसे पशुओं के लिए दिन में तीन बार भी गर्मी का निरीक्षण किया जा सकता है। एक बार निरीक्षण तब भी करना चाहिए जब ज्यादातर पशु लेटे हुए हों, क्योंकि लेटने की अवस्था में जेरे को पहचानना आसान होता है।
- पशुपालकों को चाहिए कि वे हर पशु का गर्मी में आने का व गर्भाधान का एक लिखित रिकार्ड या चार्ट बनाकर रखें। इस रिकार्ड से पशु की गर्भावस्था व अगली गर्मी में आने का आसानी से पता किया जा सकता है।
- पशुपालक जेब में आसानी से आने वाली डायरी का भी

प्रयोग कर सकते हैं। ये रिकार्ड पशुपालकों को हर पशु की गर्माने की अवस्था की जानकारी प्रदान करते हैं। इस उपाय को अपनाकर पशुपालक आसानी से दुग्ध उत्पादन व मादा पशुओं द्वारा प्रजनन में बेहतरी प्राप्त कर सकता है।

पर्यावरण (जलवायु) कारक

पर्यावरण कारक भी पशुओं के गर्माने पर निम्नलिखित प्रभाव डालते हैं–

- **तापमानः**– दोनों उच्च व निम्न तापमान ऋतुकाल पर प्रभाव डालते हैं। उच्च तापमान गर्मी की अवस्था को छोटा करता है व लक्ष्णों को भी गौंण कर देता है, जिसकी वजह से गर्मी की अवस्था को पहचानना मुश्किल हो जाता है। दिन की गर्मी के घंटों की तुलना में रात के समय होने वाली सर्दी के समय पशु गर्मी के ज्यादा लक्षण दिखाते हैं।

पशुओं की स्थिति (Location), प्रबंधन एवं रख–रखाव से जुड़े कारक

- फिसलती व धूल भरी जगह पर पशु कम लक्षण दिखाता है। इसलिए पशुपालकों को चाहिए कि वे पशुओं में गर्मी की अवस्था की जांच उस जगह पर करें जो न तो फिसलन भरी हो और न ही पशु के सामान्य व्यवहार पर असर डालती हो। जैसे कि भीड़–भाड़ व शोर की बजाय खुली जगह पर पशुओं के गर्मी के लक्षण ज्यादा उजागर होते हैं। भीड़ में पशु दूसरे पशु पर न तो चढ़ता है और न ही दूसरे पशु को चढ़ने देता है। रख–रखाव सम्बंधी गतिविधियों के दौरान पशु गर्मी के लक्षण कम उजागर करता है। इसलिए दूध निकालते समय या चारा–पानी के समय ऋतुकाल का निरीक्षण नहीं करना चाहिए क्योंकि खाने–चारे के समय पशु इनकी तरफ ज्यादा आकर्षित होता है।

पशुकारक

- गर्मी के लक्षण कुछ हद तक मादा पशु के सामान्य स्वास्थ्य, दुग्ध उत्पादन, जननांगों के स्वास्थ्य, आनुवांशिकी पर भी निर्भर करते हैं।
- जो पशु पौष्टिक आहार प्राप्त करते हैं व जिनका सामान्य स्वास्थ्य व जननांगो का स्वास्थ्य सही रहता है। वह नियमित रूप से ऋतुकाल के लक्षण दिखाते हैं। खनिज व लवणों की कमी के कारण भी कुछ पशु गर्मी के लक्षण खुलकर नहीं दिखाते। ऐसे पशुओं को कृमिरहित करने की दवा हर तीसरे महीने में देनी चाहिए, साथ ही खनिज मिश्रण (Mineral Mixture) नियमित रूप से देना चाहिए।
- साथ ही पशुओं के जननांगों की किसी भी बीमारी का अति शीघ्र इलाज कराना चाहिए। अंत में हमें यह पता लगता है कि पशु द्वारा दिखाए गए गर्मी के लक्षण कई कारणों पर निर्धारित हैं। जिनमें से पशुपालन द्वारा किया गया नियमित निरीक्षण रखरखाव व पौष्टिक आहार से जुड़े कारण मुख्य हैं। इन उपायों को अपनाकर पशुपालक गर्मी जांचने में की जाने वाली त्रुटियों को सुधारकर आसानी से पशुपालन के व्यवसाय को लाभकारी बना सकता है।

दुधारू पशुओं में गर्भपात के कारण, लक्षण व बचाव

गौरव गुप्ता[1], देवेन्द्र सिंह[2], सुजोय खन्ना[3], देवेन अरोड़ा[2] एवं अमित कुमार[4]
[1]पशु भैशज्य एवं विष विज्ञान विभाग, [2]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग,
[3]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग,[4]पशु चिकित्सक, यमुनानगर
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

प्रसव के सामान्य समय से पहले गर्भस्थ शिशु या गर्भ के नष्ट होने को गर्भपात कहते हैं। गर्भपात के समय ज्यादातर गर्भस्थ शिशु मृत अवस्था में ही गर्भ से बाहर आता है। गर्भावस्था की पहली तिमाही में हुए गर्भपात का पता नहीं चलता क्योंकि गर्भस्थ शिशु ज्यादा विकसित नहीं होता। मगर दूसरी व तीसरी तिमाही के दौरान हुए गर्भपात का पता चल जाता है। गोवंशी पशुओं में गर्भपात के कई कारण हो सकते हैं जैसे कि :

1. **ब्रूसैलोसिसः**– यह एक प्रकार का बैक्टिरीयल रोग है। इस बीमारी से ग्रसित पशु ज्यादातर तीसरी तीमाही में बच्चा गिरा देता है। यह एक प्रकार की छूत की बीमारी है और एक से दूसरे पशु में फैलती है। इस बीमारी से ग्रसित पशु को झूंड से अलग कर देना चाहिए। यह रोग इंसानों को भी लग सकता है। पशुओं में इस बीमारी का इलाज संभव नहीं है व बचाव ही उपचार है।
2. **ट्राइकोमोनियासिसः**– यह बीमारी एक प्रोटोजोन सूक्ष्मजीवी की वजह से होती है। इस बीमारी से ग्रसित पशु 6 महीने तक की गर्भावस्था में गर्भ गिरा देता है। यह रोग भी छूत का रोग है।
3. **विब्रियोसिस व अन्य सूक्ष्मजीवी** (Microrganisms) जैसे स्ट्रैप्टोकोकस, स्टैफाइलोकोकस, कम्पाइलोबैक्टर इत्यादि भी गर्भपात का कारण होते हैं। यह सब सूक्ष्मजीवी दूसरे पशुओं को भी बीमार कर सकते हैं।
4. **तेज ज्वर**– जिन बिमारियों में तेज ज्वर होता है जैसे सर्रा, बबेशिया, थिलेरिया में भी गर्भपात हो जाता है।
5. अत्याधिक कमजोरी व रक्तालपता भी गर्भपात के कारण हो सकते हैं।
6. बीमारी या आनुंवाशिक रोग के कारण कई पशुओं में प्रोजैसटीरोन हारमोन की कमी हो जाती है। यह हारमोन गर्भावस्था को सामान्य रूप से चलाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसकी कमी में भी गर्भपात हो जाता है।
7. कई प्रकार के हरे चारे जैसे ज्वार में इस्ट्रोजैनिक क्रिया ज्यादा होती है। गर्भावस्था के दौरान इन चारों के ज्यादा खिलाने से गर्भपात हो सकता है।
8. भोजन में लवणों व विटामिन की कमी होने पर भी गर्भपात हो जाता है।
9. गर्भावस्था के अंतिम दिनों में टीकाकरण के कारण भी गर्भपात हो सकता है।
10. दुर्घटना या गर्भाशय के आसपास चोट लगने पर।

लक्षण

1. योनि द्वार से रक्त, रक्तरंजित स्त्राव या मवाद युक्त स्त्राव का आना।
2. योनि द्वार पर सूजन आना।
3. बेचैनी
4. प्रसव के समय के लक्षण जैसे पुट्ठे टूटना, बाहरी जननांगों का ढीलापन इत्यादि।
5. गर्भस्थ शिशु का बाहर आना।
6. जेर का रूक जाना, हालांकि 6 महीने से कम के गर्भपात में जेर साथ में ही बाहर आ जाती है।
7. गर्भपात के बाद भी योनि द्वार से रक्तमिश्रित द्रव निकलता है। पशु को ज्वर भी हो सकता है। इन लक्षणों में पशु का इलाज कराना चाहिए अन्यथा पशु के दोबारा गर्भधारण करने में समस्या आ सकती है।

पशु पूर्णतः बांझ भी हो सकता है।

बचाव

उपरोक्त लक्षणों के दिखाई देने पर गर्भपात को रोका नहीं जा सकता, परन्तु कुछ उपायों के द्वारा गर्भपात से बचा जा सकता है। ये उपाय निम्नलिखित हैं–

1. गाभिन पशु को प्रसव से कुछ समय पूर्व दूसरे पशुओं से दूर रखना चाहिए।
2. जिस पशु का पहले गर्भपात हो चुका है उसका अगली बार गर्भधारण करने पर ज्यादा ध्यान रखें।
3. गर्भपात के बाद भ्रूण (बच्चा), जेर व योनि द्वार से आए स्त्राव को दूसरे पशुओं से दूर रखें व मिट्टी में गहरा गड्ढा खोदकर दबा दें। बाड़े की भी कीटनाशक घोल से सफाई कर दें। पानी की होद में चूने का लेप या लाल दवाई डाल दें।
4. गाभिन पशु को बाहरी चोट से बचाना चाहिए। उसे ज्यादा दौड़ाना या लम्बी यात्रा नहीं करानी चाहिए।
5. गाभिन पशु को बढ़िया पौष्टिक, आहार देना चाहिए। गर्भिणी के आहार में पर्याप्त प्रोटीन, लवण तथा विटामिन होने चाहिए।
6. गर्भिणी को गर्भावस्था के दौरान जीवन रक्षक आवश्यकताओं के अलावा 1 से 2 कि.ग्रा. अतिरिक्त दाना (Concentrate) देना चाहिए।
7. गर्भापात के बाद मृत बच्चे व गर्भापात वाले पशु के खून की जांच करवाएं।
8. गाभिन पशु की समय–समय पर पशु चिकित्सक से जांच कराते रहे व पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार ही पोषण व रखरखाव करें।
9. पशु को कृत्रिम गर्भाधान द्वारा ही गर्भित कराएं। छूत के रोगों (जैसे ब्रूसैलोसिस, ट्राईकोमोनियासिस, विबरोयोसिस इत्यादि) से ग्रसित सांड़ इस बीमारी को प्राकृतिक रूप से गर्भाधान कराने पर यह बिमारियाँ मादा पशुओं में फैलाते हैं।
10. गाभिन पशुओं को ज्वार ज्यादा मात्रा में न खिलाएं।
11. गर्भपात कर चुके पशु का दोबारा गर्भाधान पशु चिकित्सक की सलाह से ही कराएं।
12. गर्भावस्था को आखिरी तिमाही में टीकाकरण से बचने की कोशिश करें।
13. यदि गर्भपात के कारण का पता चल जाए तो झुंड के बाकी पशुओं को गर्भपात से बचाने के लिए पशु चिकित्सक से सलाह लें।
14. गाभिन पशु को चरने के लिए मत भेजें, इससे विषैला पदार्थ खाने की संभावना कम हो जाती है।

यदि पशुपालक उपरोक्त कारणों, लक्ष्णों व बचाव का ध्यान रखें तो पशुओं में गर्भपात की बीमारी को कम किया जा सकता है तथा पशुपालक को होने वाली हानि भी कम हो सकती है।

प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं में पशु आहार का महत्त्व

आनन्द कुमार पाण्डेय एवं ज्ञान सिंह
शैक्षणिक पशु चिकित्सालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

पोषाहार का पशुओं के प्रजनन पर खासा असर पड़ता है जैसे कि उचित आहार के अभाव में बांझपन जैसी समस्या का आना। आहार का संबंध पशुओं के गर्भावधि और उनकी मासिक चक्र यानि की गर्मी में आना जैसी बातों से है। पशुओं की विभिन्न प्रजनन क्रियाएं हार्मोनों (Hormones) से संचालित होती हैं और इन हार्मोनों के बनने व ठीक से काम करने के लिए पौष्टिक आहार जरूरी है, उचित आहार की कमी से पशु पर हानिकारक असर आता है जैसे ब्याने के बाद गर्भ में संक्रमण और प्रजनन क्षमता का नष्ट होना। इसके अलावा आहार का असर बच्चे की गुणत्ता बढ़ाता है तथा पशुओं के नये दूध होने (ग्याभन) होने की संभावना बढ़ती है। ब्याने के बाद तो पौष्टिक आहार की महत्ता और बढ़ जाती है। दूध के उत्पादन का सीधा संबंध आहार से है, जो हम उसे देते हैं। दूध में कैल्शियम तथा ग्लूकोज की आवश्यकता आहार से ही पूरी होती है। पशु के शरीर में ऊर्जा संतुलन जरूरी है। मिनरल मिक्स्चर (Mineral Mix.) के अभाव में कई बार दूधारू पशु ब्याने के कुछ समय बाद कमजोर और शिथिल हो जाता हैं बाद में 'Ca' की बोतलें चढ़ती हैं (Milk Fever)। विभिन्न देशों में किए गए अध्ययन भी पौष्टिक आहार की महता की तरफ संकेत करते हैं। आंकड़े बताते हैं कि अपर्याप्त पोषक तत्व की खुराक ब्याने के पहले और बाद में गायों के लिए अहितकर हैं। उनको ब्याने के दौरान परेशानी हो सकती है।

इसलिए ये जरूरी हो जाता है कि ब्याने की तिथि (संभावित) के आसपास पशु के लिए एक उचित आहार नीति अपनाई जाए। मुख्य रूप से वसा की अलग अहमियत है। यह दूध में फैट बढ़ाता है। दूध की ऊँची मात्रा बनाए रखने और दूध के जरूरी घटकों के लिए आहार संतुलन जरूरी है। शिशु शरीर को बनाने के लिए आहार बहुत जरूरी है। उचित पोषण के अभाव में बच्चा सही विकसित नहीं हो पाता। कई बार जन्म के बाद बच्चा शारीरिक विकृतियाँ लिए होता है। हो सकता है उसका दिमाग आधा विकसित हो। ऐसी कई समस्याएं किसान लेकर पशु–चिकित्सक के पास आते हैं। दूधारू पशुओं को प्रोटीन की भी बहुत जरूरत होती है जिसकी पूर्ति खल से होती है।

इसके अलावा जो पशु प्रजनन के लिए तैयारी में हैं उनके लिए भी आहार पौष्टिकता जरूरी है। मादा पशुओं में Ovary होती हैं जो अण्डा बनाती है। इन्ही अण्डों का Heat चक्र के दौरान उत्सर्जन होता है। जो बाद में A.I. या नर–पशु से मिलाप के बाद शुक्राणु से निषेचित होकर भ्रूण बनाता है। इन सरल सी लगने वाली घटनाओं के पीछे बहुत सी जटिलताएं होती हैं। इनको सुचारू रूप से होने के लिए पौष्टिक आहार एक वरदान है। 'इंसुलिन' नामक हार्मोन वाला आहार पशुओं में प्रजनन के लिए महत्वपूर्ण हैं। पशुओं को शरीर के वजन के अनुसार और उनकी दूध–उत्पादन की क्षमता के मुताबिक आहार दिया जाना चाहिए। सही आहार से पशु 1 साल में ब्या जाता है। प्रजनन सही रहती है, पशु ठीक से गर्मी में आता है तथा मिलाप के बाद गर्भ ठहरने की दर बढ़ जाती है। दिन पूरे होने के बाद पशु ब्या जाता है। इस प्रकार सारी प्रक्रिया सुचारू रूप से चलती रहती है।

यह बात वैज्ञानिक रूप से सिद्ध है कि संतुलित खुराक पशुओं की रोगों से लड़ने की क्षमता भी बढ़ा देती है। गर्भ में पल रहा बच्चा भी मादा के खून द्वारा अपनी आहार संबंधी जरूरतें पूरा करता है। जन्म के बाद भी पशु का पहला दूध (Colostrum) जरूरी तत्वों से परिपूर्ण होता है जो बच्चों को रोगों से बचाता है। यह ध्यान रखा जाए कि गर्भावस्था के दौरान कोई ऐसा आहार न दें जिसमें जंगली पौधे शामिल

हों, जिनमें ऐसे रासायनिक पदार्थ होते है जो बच्चा गिरा देते हैं। विषाक्त भोजन से पशुओं को बचाएं। विभिन्न पोषक तत्वों जैसे वसीय अम्ल आदि निश्चित मात्रा से ज्यादा न हों अन्यथा वे खतरा पैदा कर सकते हैं। कई बार नमी वाले चारे पर फफूंदी उग आती है। ऐसा भोजन पशुओं को न दें।

इसी प्रकार नर पशु की भी अपनी भोजन संबंधी जरूरतें हैं। मान लीजिए किसी बछड़े को प्रजनन के लिए तैयार करना है तो शुरू से ही हमें उसे ऐसा पौष्टिक आहार देना होगा जिससे उसकी सही वृद्धि हो। सही खाने से उसके हार्मोन सही बनेंगे। उसकी (Libido) समागम की रूचि ठीक बनी रहेगी। उसके शुक्राणुओं की गुणवत्ता उच्च कोटि की होगी। वह सही प्रकार से सर्विस दे पाएगा। अक्सर किसान यही शिकायत लेकर आते हैं कि उनका सांड़/झोटा ठीक से सर्विस नहीं दे पा रहा। उनकी यह समस्या आहार संबंधी कारणों से भी हो सकती है। इसलिए शुरू से ही उन्हें अच्छे खान–पान पर रखें।

मुर्गियों के फीड में हार्मोन क्यों न दें?

देवेन्द्र सिंह[1], सुजोय खन्ना[2], अखिल कुमार गुप्ता[3], विशाल शर्मा[2] एवं राजेन्द्र यादव[4]
[1]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग, [2]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग,
[3]पशु सुक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग, [4]पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

आज कल पोल्ट्री उद्योग में फीड में हार्मोन पर चर्चा आम हो रही है। यह बात अक्सर विकसित मुर्गी–पालकों द्वारा गोष्ठियों में उठ रही है। क्या हमें पोल्ट्री पोषण में हार्मोन शामिल करने चाहिए? सभी पोषण विशेषज्ञ जानते हैं कि यह गलत है। हार्मोन पोल्ट्री फीड में नहीं मिलाये जाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में कई कंपनियों के फीड उत्पाद प्रदर्शित होते हैं। वहां पर एक भी फर्म पोल्ट्री के लिए हार्मोन प्रदर्शित नही करती है। अब सवाल यह उठता है कि आम जनता, मुर्गी–पालक इन पदार्थों को पोल्ट्री उत्पादन का अभिन्न हिस्सा क्यों मानती हैं।

पिछले कई वर्षों से कुछ पोल्ट्री उत्पादक अपने विज्ञापन अभियानों में हार्मोन का उपयोग नहीं करने पर बल देते आए हैं। शायद इस तरह के विज्ञापनों से अन्य उत्पादकों के हार्मोन का उपयोग करने की व्याख्या की जा सकती है या कि अतीत में कुछ समय पहले यह एक आम बात थी।

पोल्ट्री उत्पादन से अपरिचित लोगों का हार्मोन उपयोग पर शक का एक अन्य संभावित कारण आज के ब्रायलर मुर्गियों का तीव्र विकास व वजन वृद्धि हो सकता है।

चाहे कुछ भी हो पोल्ट्री फीड में हार्मोन मिलाने की यह धारणा पूरी तरह से गलत है और पोल्ट्री उद्योग की प्रगति में बाधक है क्योंकि आने वाले समय में जो स्वास्थ्य के प्रति सजग उपभोक्ता हैं वे इस प्रकार की चीजों से दूर रहते नजर आएंगे। मुर्गी–पालकों व फीड–निर्माताओं को यह विदित होना चाहिए हार्मोन का पोल्ट्री उत्पादन में इस्तेमाल क्यों नहीं किया जा सकता है। इसके ठोस कारण निम्नलिखित हैं :–

1. फीड में हार्मोन का उपयोग अवैध है। भारत और कई अन्य देशों में पशु फीड में हार्मोन या हार्मोन की तरह के पदार्थों के प्रयोग पर सख्त प्रतिबंध है व कड़े कानून है। किसी भी मामले मे मुर्गी पालन के लिए हार्मोन का इस्तेमाल मंजूर नहीं है। यह अवधारणा गलत है कि केवल हार्मोन वाला फीड अच्छी वजन वृद्धि करते हैं।
2. वृद्धिहार्मोन देने से मुर्गियों के वजन में कोई वृद्धि नहीं होगी। वजन वृद्धि एक अत्यंत जटिल संयोजन है। व यह कई चीजों पर निर्भर करता है।
3. हार्मोन देने की प्रक्रिया बेहद मुश्किल है। उदाहरण के लिए इंसुलिन जो मधुमेह के उपचार में प्रयोग किया जाता है, वृद्धि हार्मोन की तरह एक प्रोटीन है। इनमें से किसी भी हार्मोन का मुँह से सेवन करने पर अन्य भोजन तत्वों की भांति पाचन तंत्र क्रिया से गुजरना पड़ता है व इनकी खंडन प्रक्रिया भी पाचन में ही होती है। यह बात अच्छी तरह से जानी जाती है कि मधुमेह रोगियों को इंसुलिन के इंजेक्शन के रूप में ही प्राप्त करने होते हैं। वृद्धि हार्मोन के सकारात्मक प्रभाव की संभावना को अगर मान भी लें तो भी इस हार्मोन को निरंतर अंतराल पर मुर्गियों में इंजेक्ट करने की आवश्यकता होगी जो इसे अंसभव बना देती है। खोज में यह पाया गया है कि मुर्गियों में वृद्धि हार्मोन हर 90 मिनट में अपने चरम स्तर पर पहुंचता है। अतः अगर हमें वृद्धि हार्मोन प्रभावी ढंग से देना है तो यह करने के लिए केवल असरकावक तरीका नसों में नियमित रूप से देना है जो कि असंभव व अव्यवहारिक है।

4. वजन वृद्धि के लिए इनका उपयोग लाभप्रद साबित नहीं हो सकता, क्योंकि इसकी लागत बहुत अधिक है। 1 मिलीग्राम पोल्ट्री वृद्धि हार्मोन एक पक्षी को देने पर लागत पक्षी के मूल्य से भी अधिक हो जाती है। अतः यह मुनाफे का पोल्ट्री उत्पादन नहीं है।

5. वजन वृद्धि के नकारात्मक प्रभाव भी होते हैं। वजन वृद्धि आमतौर पर जोड़ों की सूजन और अन्य समस्याओं को बढ़ावा देता है। उसी तरह आधुनिक ब्रायलर अपने अधिकतम क्षमता के अनुसार सामान्य उपापचयी के नजदीक फीड/आहार के साथ सही व और अधिक वृद्धि भड़काने वाले तत्वों से कभी–कभी विकास दर को कम करने, दिल का दौरा व अन्य बिमारियों के प्रति मुर्गियों को ज्यादा संवेदनशील बना सकता है।

6. अतः मुर्गी–पालकों को यह समझ जाना चाहिए कि आज की ब्रायलर मुर्गियां अनुवांशिक रूप से बदली हुई है जो सामान्य फीड/आहार (बिना हार्मोन के) के साथ ही कम से कम बिमारियों के साथ अधिक से अधिक मुनाफा दे सकती हैं व आज के युग में जहां स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ रही है इसमें हार्मोन का प्रयोग समझदारी नहीं है।

गाय में गर्भकाल के दौरान होने वाली समस्याएँ

ज्ञान सिंह, आनंद कुमार पाण्डेय एवं सोनू कुमारी
शैक्षणिक पशु चिकित्सालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

1. **परिचय** : गर्भकाल के दौरान गाय एवं भैंस में कई समस्याएँ हो सकती हैं। यह समीक्षा असंक्रामक/असामान्य भ्रूण के विकास को उजागर करेगी। यथा संभव इस उपचार के विकल्प और इनमें जटिलताओं के निदान पर विचार–विमर्श किया गया है।

2. **गर्भाशय घुमाव** : लीगामैंट्स गर्भाशय के कम वक्रता से लगे होते हैं जो अधिक वक्रता को छोड़ने के साथ गाय में तीसरी तिमाही के दौरान गर्भाशय के घुमाव को बढ़ावा देते हैं। जैसे ही गाय अपने पिछले पैरों से खड़ी होती है तो पहले गर्भाशय अस्थायी रूप से अस्थिर हो जाता है। विशेष रूप से जब Rumen अपेक्षाकृत खाली होता है। भ्रूण की मजबूत हलचल और कमजोर मातृ मांसपेशी, गर्भाशय के घुमाव में योगदान करते हैं। 89% मामलों में भ्रूण का वजन सामान्य से ऊपर होता है। पेट दर्द और बेचैनी टोरसन के सबूत हैं। अन्य लक्षण जैसे कि भूख न लगना, Rumen ठहराव, कब्ज, नाड़ी और श्वसन में वृद्वि आमतौर पर मौजूद होते हैं। गर्भाशय घुमाव का निदान अंतिम गर्भावस्था पर आधारित होता है।

   Trans rectal (गुदा द्वार के जरिए) टटोलने से टोरसन का पता चलता है। घुमावदार सिलवटें योनि में महसूस की जा सकती हैं। अधिकांश घुमाव दाएं होते हैं। सामान्य तौर पर गर्भाशय बिना शिशु वाले हिस्से पर घुम जाता है। लगभग 60 प्रतिशत गर्भधारण cervix के आगे होते हैं। (योनि की कोई भागीदारी नहीं होती)। 45–90 के घुमाव असामान्य हैं, 20 प्रतिशत (90 से 180 डिग्री) है, 57 प्रतिशत 180–270 है, 22 प्रतिशत 270–360 है। घुमाव की घनता के आधार पर गंभीरता निर्भर करती है। 90 या उससे कम के घुमाव में, भ्रूण को Manually सामान्य स्थिति में लाया जा सकता है। ज्यादा घुमाव में गाय को भ्रूण के चारों और पलटन से सुधारा जा सकता है। गाय को रस्सियों के साथ जमीन पर घुमाव की दिशा में गिराया जाता है। एक लंबा फट्टा गाय के Para lumbar fossa पर रखा जाता है और एक व्यस्क व्यक्ति उस पर खड़ा होता है। आगे के पैरों को एक साथ बांधा जाता है। (जैसा कि पिछले पैरों को) और उन्हें लेटी हुई गाय के ऊपर–ऊपर से खींचा जाता हैं गंभीर मामलों में Caeserian (operation) करके ही भ्रूण को निकाला जाता है। रोग का निदान डिग्री की गंभीरता पर निर्भर करता है।

3. **योनि का आगे को बढ़ाव (गात दिखाना)** : पशुओं में देर के गर्भ के दौरान एक लेवल पर बने रहने वाले Plasma estrogen की सांद्रता प्राथमिक गड़बड़ी के कारण Cervico-Vagina का आगे को बढ़ाव होता है। आगे को बढ़ाव की रोगजनन और विकास प्रगतिशील है। यह पहले योनि की श्लेश्मा झिल्ली के दिखने के साथ शुरू होता है। बाहर निकला मांस अन्दर–बाहर होता है। जैसी ही गाय खड़ी या नीचे बैठती है, बाहर निकली झिल्ली सूख जाती है और चिढ़ पैदा करती है जिसके कारण तनाव होता है और आगे को बढ़ाव ज्यादा दिखाई देता है। निकले हुए हिस्से में पानी भर जाता है जो सूजन करता है। अंत में गर्भाशय और कभी–2 मूत्राशय भी शामिल हो सकते है। Prolapsed योनि की जगह ले लेती है जिसमें आती हैं भ्रूण झिल्ली, खूनी तरल पदार्थ, Vulvar रक्तगुल्म, Vestibular ग्रंथियां और ट्यूमर। उपचार गंभीरता पर

निर्भर करता है। गाय के पिछले हिस्से को एक ऊंची जगह पर रखकर एक स्टाल में या योनि में sutures का प्रयोग करके। जिन जानवरों में गर्भ धारण नहीं है, उनमें एक गहरा स्ट्रिंग suture लगाते हैं। साथ में epidural संवेदना के तहत। सुई के उपयोग का एक नुकसान यह है कि fistulas बन सकते हैं जबकि गहरा string suture मुश्किल से निकलता है क्योंकि ये ऊतकों में धंस जाते हैं। रोग का निदान गंभीरता पर निर्भर करता है। वैसे भी सबसे ज्यादा Prolapse गर्भावस्था के दौरान होते हैं तो गाय को प्रसव के समीप आने के साथ लक्षण देखते रहना चाहिए ताकि आगे को बढ़ाव पिन या सीवन (Suture) समय से हटा दिए जाएं। संततिजनन के बाद गर्भाशय के आगे को बढ़ाव में कोई संबंध नहीं होता। हालांकि योनि आगे को बढ़ाव दोबारा होने की संभावना है। अगले गर्भावस्था के दौरान गर्भाशय के आग्र बढ़ाव आम तौर पर नहीं होता।

4. **Mummification** : यह एक भ्रूण से जुड़ी असामान्य घटना है। गोजातीय भ्रूणों के Mummification के लिए कोई विशेष पहचान नहीं हुई है। इसके लिए कई आवश्यक शर्तें हैं –

1. भ्रूण मरा होना चाहिए, 2. गर्भाशय में हवा नहीं होनी चाहिए (cervix बंद होनी चाहिए), 3. कोई जीवाणु गर्भाशय तक नहीं पहुंचना चाहिए (रक्त के माध्यम से) जिससे भ्रूण जल्दी मर जाता है। एक कारण जो आसानी से समझा जा सकता है, लेकिन जो शायद नहीं होता है, वो गर्भावस्था के प्रारंभिक चरण में नाल की रस्सी का घुमाव। गाय में Mummification सबसे आम गर्भावस्था के पहले के अंत और दूसरी तिमाही की शुरूआत में होता है। भ्रूण के मरने के बाद भ्रूण तरल पदार्थ धीरे– धीरे अवशोषित हो जाता है। गर्भाशय की दीवार भ्रूण के चारों और कस के सिकुड़ जाती है। अतः आँख की पुतली पूरी तरह सूख जाती है। Caruncles भी गायब हो जाते हैं। भ्रूण धीरे–धीरे Compact हो जाता है तथा एक चमड़े की बनावट जैसा हो जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में कई सप्ताह भी लग सकते हैं जो भ्रूण की उम्र, उसकी मृत्यु के समय पर निर्भर करती है। इस बीच गाय Symptomatic (लक्ष्ण दिखाने वाली) हो जाती है। अक्सर पहला संकेत होता है जब गाय में किसी भी थन का विकास नहीं होता जब वो ब्याने के नजदीक होती है और वास्तव में वह ब्याने में विफल रहती है। उस समय गुदा द्वार परीक्षण से पता चलता है कि गर्भाशय तरल पदार्थ रहित है और वह कसकर भ्रूण के चारों ओर है। उपचार अपेक्षाकृत सरल है। हालांकि कई बार आर्थिक रूप से उचित नहीं होता (क्योंकि गाय दूध नहीं देती और कम से कम 10 महीने लेगी ब्याने से पहले)। इसलिए ज्यादातर मामलों में उन्हें मार दिया जाता है। एकमात्र इलाज है, एक Luteolytic खुराक PGF2 की जोकि गाय में आमा लाएगी 3 से 5 दिनों में। गर्भाशय ग्रीवा खुल जाएगी और ढीली हो जाएगी। गर्भाशय अनुबंध होगा और Mummy निष्कासित कर दिया जाएगा। 4–5 दिनों के इलाज के बाद योनि की जांच की जानी चाहिए। अपनी चिपचिपी, शुष्क प्रकृति की वजह से Mummy योनि में फंस सकती है। उसे बाहर निकालने के लिए सहायता की आवश्यकता हो सकती है। कभी–कभी बड़ी Mummy अपर्याप्त गर्भाशय के संकुचन और अपर्याप्त गर्भाशय ग्रीवा के फैलाव के कारण, Caesarian से उपचार करना पड़ता है। Mummy के निष्कासन के बाद गर्भाशय बहुत जल्दी अपने आकार में आ जाता है। इसका Lumen दूषित नहीं होता है और Caruncle भी पहले से ही involute हो चुके होते हैं। इसलिए अगले मद में वापस प्रजनन करवा सकते हैं। वो भी गर्भाधान के अच्छे मौके के साथ।

5. **भ्रूण आर्द्रीकरण** : हालांकि भ्रूण Mummification तब होता है जब भ्रूण गर्भाशय के अंदर मर जाए, हवा और बैक्टिरिया के संदूषण के अभाव में व गर्भाशय ग्रीवा

कसकर बंद रहती है। लेकिन भ्रूण वातस्कीति या आर्द्रीकरण तब होते हैं जब गर्भाशय ग्रीवा खुली हो और विविध जीवाणु गर्भाशय पर आक्रमण करे योनि में से। भ्रूण आर्द्रीकरण अधूरे गर्भपात के बाद होता है। लेकिन यह सामान्य नहीं है। बाद वाला एक आंशिक रूप से फैली हुई गर्भाशय ग्रीवा या एक काफी सूखे हुए भ्रूण की असामान्य प्रस्तुति जो उसे गर्भांश में बनाए रखे के परिणाम से होता है। मृत भ्रूण को अगर शरीर के तापमान पे incubate करे तो उसमें जीवाणु तेजी से संख्या बढ़ाएंगे और भ्रूण सड़ेगा। गर्भाशय की दीवार मोटी हो जाती है तथा बिखरे हुए भ्रूण को कैप्सूल की तरह घेर लेती है जैसे कि गर्भाशय की दीवार में कोई फोड़ा हो। तीव्र नुकीली हड्डियां (जैसे भ्रूण की पसलियां) गर्भाशय की दीवार में खुद को गहराई में धंसा लेती है। कभी–कभी कोई हड्डी गर्भाशय की दीवार को चीर देती है और adhesions के द्वारा घेर ली जाती है। इस बीच गाय आंतरायिक तनाब के अस्पष्ट संकेत प्रदर्शित करती है जिसके साथ एक बदबूदार लाल रंग का योनि से स्त्राव होता है। जिसमें छोटी हड्डियां भी शामिल हो सकती है। गाय में हल्का ज्वर, भूख घटना और उदास होना जैसे लक्ष्ण भी आते है। दूध उत्पादन कम हो जाता है। इस बीमारी का पता आसानी से गुदा द्वारा किया जाता है। इसमें गर्भाशय की दीवार मोटी और मजबूत होती है। उतार–चढ़ाव अनुपस्थित होता है तथा उन्नत मामलों में भ्रूण की हड्डियों के चटखने को महसूस किया जा सकता है। आमतौर पर एक मामूली पीप युक्त योनि स्त्राव होता है। गाय के भविष्य के प्रजनन की संभावना बहुत कम होती है। ऐसा गर्भाशय की भीतरी परत की क्षति के कारण होता है। इसलिए उपचार आमतौर पर एक आर्थिक रूप से व्यवहार्य विकल्प नहीं है और गाय को Cull (छोड़ देना) कर देना चाहिए। अगर कोई जानवर कीमती है तो उसका उपचार एक Luteolytic खुराक (PGF2) देकर कर सकते हैं। यह गर्भाशय के अंदर की सामग्री को खाली कर देगा। हालांकि कुछ हड्डियां आंशिक रूप से दीवार में धंस जाती है तथा नहीं निकलती। अंतिम उपाय है शल्य चिकित्सा जो अलग पड़ी हड्डियों को निकालने में सहायता करती है।

6. **Hydrops (अपरापोषिका)** : यह समस्या दूधारू और मीट वाले पशुओं में कई बार देखी जाती है। द्रव्य का अत्यध्कि संचय गर्भ के बीच की अवधि के दौरान हो सकता है। लगभग दस गुणा द्रव्य की मात्रा में वृद्धि होती है जोकि 200 लीटर तक पाया गया है (सामान्यतया यह 8–15 लीटर होती है)। अपराशिथिलता से दो बातें स्पष्ट हैं। यह समस्या पशु में प्लेसेंटा सही से कार्य न करे तब उत्पन्न होती है। पोषक तत्वों की कमी होना भी इस समस्या का एक कारण है। प्रभावित गायों में दोनों तरफ पेट का बढ़ाव पाया गया है। ये गायें दुःखी, क्षुधालोपक (भूख मरना) और बिना पाचन गतिविधयों जैसी समस्याओं से ग्रसित पाई गई हैं। इन गायों में बाद में निर्जलीकरण और कब्ज, तथा अंत में पतली गायों में स्थाई रूप से बैठे रहना देखा गया है। गुदा द्वारा परीक्षण के दौरान गर्भाशय की दीवार बहुत ही तंग पाई जाती हैं जिसमें भ्रूण को टटोलना मुश्किल होता है।

ऐसे पशुओं का उपचार सिर्फ और सिर्फ गर्भपात करवाना ही है।

पशुओं में मुँह व खुर रोगः पशुपालक की भूमिका

स्वाति दहिया एवं नरेश कक्कड़
क्षेत्रीय मुँह–खुर रोग केन्द्र, पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग,
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

परिचय

मुंह व खुर रोग (Foot and Mouth Disease, FMD) फटे खुरों वाले पशुओं यानि गाय, भैंस, बकरी, भेड़ एवं सुअरों में होने वाला अत्याधिक संक्रामक रोग है।

कारण

यह रोग एक अत्यंत सूक्ष्म विषाणु से होता है। इस विषाणु के सात मुख्य प्रकार व कई उप–प्रकार होते हैः O, A, Asia 1, C, SAT-1, SAT-2, SAT-3. भारत में इस रोग के केवल तीन प्रकार O, A, Asia-1 के विषाणु पाए जाते है।

रोग से क्षति

इस बीमारी से अपने देश में प्रतिवर्ष लगभग 20 हजार करोड़ रुपये का प्रत्यक्ष नुकसान होता है। दुधारू पशुओं में दूध की उत्पादकता में कमी आती है। बैलों में रोग आने पर काम करने की शक्ति कम हो जाती है। प्रजनन क्षमता में गिरावट आ जाती है। पशुधन ब्यापार पर असर पड़ता है। छोटे पशुओं में मृत्यु भी हो जाती है। ग्रसित भेड़, बकरी व सूअर के शरीर में दुर्बलता एवं ऊन व मीट उत्पादन में कमी आ जाती है।

लक्षण

रोगी पशु सुस्त हो जाता है व तेज बुखार आ जाता है। मुंह से अत्याधिक लार टपकती है और झाग बनती है। जीभ, होठ व मसूढ़ों पर छाले बन जाते हैं जो बाद में फट कर घाव में बदल जाते हैं। मुंह खोलते और बंद करते समय विशेष प्रकार की चप–चप आवाज आती है। खुरों के बीच घाव होने पर पशु लंगड़ा कर चलता है। मुंह में घाव होने की वजह से पशु आहार लेना और जुगाली करना बंद कर देता है। थनों पर भी कभी–कभी छाले उभर जाते हैं। छोटे पशुओं में तेज बुखार आने के बाद बिना किसी लक्षण के मृत्यु हो जाती है। परन्तु व्यस्क पशुओं में मृत्यु दर बहुत कम है। सूअरों में लार टपकने की बजाए थूथन पर फफोले बन जाते हैं।

रोग का निदान

रोगी पशुओं के लक्षणों द्वारा एवं फफोले की खाल में विषाणु के प्रकार की जांच प्रयोगशाला में आधुनिक तकनीक (ELISA) द्वारा की जाती है। टीकाकरण पश्चात पशु की इस विषाणु के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का प्रयोगशाला में संवेदनशील तकनीक (LPB-ELISA) द्वारा पता लगाया जाता है।

सहायक उपचार

बुखार की अवस्था में पशु चिकित्सक से संपर्क करें।

(क) मुंह के घावों को धोने के लिए

1. बेरिक एसिड (15 ग्राम प्रति लीटर पानी में)
2. पोटाशियम परमैंगनेट (1 ग्राम प्रति लीटर पानी में)
3. फिटकरी (5 ग्राम प्रति लीटर पानी में)

(ख) खुरों के घावों को फिनाइल (40 मि.ली. प्रति लीटर पानी में) के घोल से अच्छी तरह साफ करके कोई भी एंटीसेप्टिक क्रीम लगानी चाहिए।

पशु चिकित्सक के परामर्श पर ज्वरनाशी एवं दर्दनाशक दवा का प्रयोग करें।

बचाव व रोकथाम

पशुपालकों को अपने सभी पशुओं (चार महीने से ऊपर) को टीका लगवाना चाहिए। प्राथमिक टीकाकरण के चार सप्ताह के बाद पशु को बूस्टर खुराक देनी चाहिए और प्रत्येक 6 महीने में नियमित टीकाकरण करना चाहिए। टीकाकरण के दौरान

प्रत्येक पशु के लिए अलग–अलग सुई का प्रयोग करें।

- नये पशु को झुंड या गांव में लाने से पहले उसके खून (सीरम) की जांच अवश्य करवाएं। क्षेत्रीय मुंह–खुर रोग केन्द्र, पशु चिकित्सा महाविद्यालय, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार में इस रोग की जांच की सुविधा मुफ्त उपलब्ध है।
- नए पशुओं को कम से कम चौदह दिनों तक अलग बांध कर रखना चाहिए तथा आहार और अन्य प्रबन्ध भी अलग से ही करना चाहिए।
- रोगी पशुओं को अन्य पशुओं से अलग रखिए।
- रोगी पशु के पेशाब, लार व बचे हुए चारे, पानी व रहने के स्थान को असंक्रमित करें (4 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट से)
- आवारा पशुओं को घरेलु पशुओं व गांव से दूर रखें।
- पशुओं को पूर्ण आहार देना चाहिए जिससे खनिज एंव विटामिन की मात्रा पूर्ण रूप से मिलती रहे।
- अगर किसी गांव या क्षेत्र में मुंह–खुर रोग से ग्रसित पशु हो तो पशुओं को सामुहिक चराई के लिए नहीं भेजें अन्यथा स्वस्थ पशुओं में रोग फैल सकता है। रोगी पशुओं को पानी पीने के लिए आम स्त्रोत जैसे कि तालाब, धाराओं, नदियों पर नहीं भेजना चाहिए, इससे बीमारी फैल सकती हैं। पीने के पानी में 2 प्रतिशत सोडियम बाइकार्बोनेट घोल मिलाना चाहिए।

पशुओं के बाह्य परजीवी एंव उपचार

राजेन्द्र यादव[1], देवेन्द्र सिंह[2], रिकी झांभ[1] एंव निलेश सिन्धु[3]

[1]पशु औषधि विज्ञान विभाग, [2]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग,

[3]शैक्षणिक पशु चिकित्सालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

वह जीव जो अपने जीवन का कुछ भाग या पुरा जीवन दूसरे जीवों के शरीर के अन्दर या शरीर के ऊपर गुजारते हैं, परजीवी कहलाते हैं। इस संयोग में परजीवी हमेशा लाभ में रहता है और दूसरा जीव हानि में रहता है। रिहायस के आधार पर दूसरे जीव के शरीर के ऊपर गुजारा करने वाले जीव बाह्य परजीवी कहलाते हैं। बाह्य परजीवियों में विभिन्न प्रकार की मक्खियां, चिचड़ियां, खाज–खारिश करने वाली बरूथियां तथा जुएं आदि आती हैं, जो पशु के शरीर के बाहरी भागों में रहती हैं तथा खून व द्रव चूसती है और अन्य रोगों को भी फैलाती हैं। लगभग सभी पशु अपने जीवनकाल में कभी ना कभी इन बाह्य परजीवियों का शिकार होते हैं। बाह्य परजीवियों के कारण पशुओं को काफी तकलीफों से गुजरना पड़ता है तथा पशुपालकों को भी काफी हानि उठानी पड़ती है।

पशुओं में होने वाले बाह्य परजीवियों के कारण होने वाले विभिन्न हानिकारक प्रभाव इस प्रकार हैः–

1. बाह्य परजीवी पशु के शरीर से खून चूसने का काम करते हैं जिसके कारण पशु के शरीर में खून की कमी (एनीमिया) हो जाती है तथा पशु कमजोर हो जाता है।
2. बाह्य परजीवियों के कारण पशु की त्वचा पर लगातार खुजली होती रहती है जिसके कारण पशु के बाल/ऊन झड़ जाते हैं।
3. बाह्य परजीवियों के कारण पशु की त्वचा पर लगातार होने वाली खुजली की वजह से पशु चिड़चिडा हो जाता है।
4. कुछ बाह्य परजीवी पशुओं में विभिन्न प्रकार की बीमारियां जैसे– थिइलेरियोसिस, बबेसियोसिस (चिचड़ी बुखार), अनाप्लाज्मोसिस तथा ट्रिपेनोसोमियसिस (सर्रा) भी फैलाते हैं।
5. कुछ बाह्य परजीवी पशुओं में विभिन्न प्रकार के आन्तरिक परजीवी भी फैलाते हैं।
6. बाह्य परजीवी पशुओं में होने वाले त्वचा रोग जैसे खाज–खुजली का कारण भी बनते हैं।
7. कुछ बाह्य परजीवी जैसे कि टीक्स (चिचडीयां) पशुओं के शरीर पर जहरीले पदार्थ छोड़ती हैं, जिनसे पशुओं में लकवे की शिकायत भी हो सकती है जिसे टीक पैरालाईसिस कहा जाता है।
8. पशु चारा–पानी लेना कम कर देता है।
9. पशु के दूध में भी गिरावट आ जाती है।
10. पशु का वजन कम होने लग जाता है।
11. अव्यस्क पशुओं का विकास रूक जाता है।
12. पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है।
13. कुछ बाह्य परजीवी पशु के शरीर पर कई बार खून चूसने के अलावा त्वचा पर घाव भी कर सकते हैं।
14. यदि किसी पशुपालक का एक पशु बाह्य परीजीवियों का शिकार हो जाता है तो वह अन्य पशुओं में भी इनको फैलाने का काम करता है।

बाह्य परजीवियों से बचाव के उपाय :

पशुपालक अपने पशुओं को बाह्य परजीवियों से बचाने के लिए निम्नलिखित उपाय कर सकते हैं –

1. परजीवी के रिहायस क्षेत्र में निरन्तर बदलाव पशुओं तथा पशुशाला में लगातार विभिन्न प्रकार के बदलाव करने से बाह्य परजीवी तथा उनके अंडे व लार्वा जीवित नहीं रह पाते हैं। ये बदलाव विभिन्न प्रकार से

किए जा सकते हैं – जैसे कि कचरे तथा गन्दगी की पूरी सफाई, मिट्टी में हल चलाना, मिट्टी में बदलाव, मिट्टी में चूने का छिड़काव करना, पशुशाला की सफाई, गोबर का उचित प्रबन्ध एवं सफाई तथा पशुशाला के चारों तरफ से घास–फूस को हटाना।

2. बाह्य परजीवी ग्रस्त क्षेत्र से पशुओं का हटाना– चूंकि बाह्य परजीवी पशु के बिना अपने जीवन का निर्वाह नहीं कर सकते हैं, इसलिए अगर पशुओं को बाह्य परजीवी ग्रस्त क्षेत्र से कुछ समय के लिए हटा दिया जाता है तो परजीवी उस क्षेत्र में जीवित नहीं रह पाएंगे। पशुपालक विभिन्न तरीकों से यह कर सकते हैं जैसे पशुओं को खुले में घूमने देना तथा पशुओं को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चरने के लिए भेजना।

3. घास–फूस एवं अन्य वनस्पति को जलाना–परजीवी ग्रस्त क्षेत्र में उगी हुई घास–फूस एवं अन्य वनस्पति को जलाने से उस क्षेत्र में उपस्थित परजीवियों तथा उनके अंडों या लार्वा को समाप्त किया जा सकता है।

4. कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग– पशु के शरीर से इन परजीवियों को समाप्त करने के लिए पशुओं के शरीर पर तथा पशुशाला के अन्दर कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग अति आवश्यक है। चूंकि प्रयोग में लाई जाने वाली ज्यादातर दवाइयां जहरीली होती हैं, अतः इनका प्रयोग सावधानी से तथा बताई गयी मात्रा में ही करना चाहिए। ये कीटनाशक दवाइयां निम्नलिखित तरीकों से प्रयोग में लाई जा सकती हैं –

(क) छिड़काव (स्प्रेयींग) : दवाई लगाने के इस तरीके में कीटनाशक की उचित मात्रा पानी में मिलाकर पशु के शरीर के ऊपर तथा पशुशाला में छिड़काव पम्प द्वारा छिड़काव किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के छिड़काव पम्प बाजार में उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग किया जा सकता है। छिड़काव करते समय पशु के मुंह, आँख व नाक को बचाकर रखना चाहिए तथा इसके साथ ही पशु के शरीर की ऐसी जगहों पर अच्छी तरह से छिड़काव करना चाहिए जहां ये परजीवी ज्यादा पनपते हैं जैसे कि शरीर का निचला हिस्सा, पैरों की अन्दरूनी सतह तथा पूंछ इत्यादि। इस तरीके से पशुशाला में कीटनाशक का अच्छी तरह से हर कोने में तथा आसानी से छिड़काव किया जा सकता है।

छिड़काव की उपयोगिता

- यह तरीका बड़े पशुओं (गाय, भैंस आदि) में बहुत ही कारगर है।
- छिड़काव करते समय पशु के शरीर पर लगा हुआ गोबर, मिट्टी तथा अन्य गंदगी भी साफ हो जाती है।
- यह तरीका पशुशाला में बहुत ही कारगर है।

छिड़काव की अनुपयोगिता

- यह तरीका भेड़ व बकरियों के लिए कारगर नहीं है क्योंकि इन पशुओं में गहरी ऊन/बालों के कारण कीटनाशक अच्छी तरह से लगाना मुश्किल है।
- इस तरीके के कारण वायु प्रदूषण का खतरा रहता है।

(ख) कीटनाशक के घोल में डुबोना (डीपींग) – इस विधि में पशुओं को उचित मात्रा में बनाए गए कीटनाशक के घोल में एक–एक करके टैंक में नहलाया जाता है। हर एक पशु को कम से कम दो मिनट तक (मुंह, नाक, कान तथा आंख बचाकर) कीटनाशक के घोल में डूबोया जाता है। यह तरीका मुख्यतः भेड़ एवं बकरियों के लिए काम में लिया जाता है। इस विधि को अपनाने के लिए एक कंक्रीट का पक्का टैंक बनाया जाता है, जिसकी माप निम्नलिखित हो सकती है –

गहराई	–	5 फीट
चौड़ाई	–	3.3 फीट
ऊपरी सतह की लम्बाई	–	8.3 फीट
नीचे की सतह की लम्बाई	–	5 फीट

डीपींग की उपयोगिता

1. यह तरीका भेड़ एवं बकरियों के लिए बहुत ही कारगर है।

2. यह आसान तरीका है एवं इसमें समय की भी बचत होती है।
3. यह तरीका बाह्य परजीवियों से बचाव के लिए बहुत ही कारगर सिद्ध होता है, क्योंकि इसमें कीटनाशक को घोल गहरे बालों/ऊन में भी अच्छी तरह से पहुंच जाता है।
4. इस विधि के द्वारा पशु के शरीर से गोबर, मिट्टी तथा अन्य गंदगी की भी अच्छी तरह से सफाई हो जाती है।

डीपींग की अनुपयोगिता

1. यह तरीका बड़े पशुओं के लिए कारगर नहीं है।
2. यह तरीका ग्याभिन भेड़ एवं बकरियों में भी नुकसानदायक हो सकता है।
3. जिस पशु के शरीर पर कोई घाव हो उसमें भी यह विधि अनुपयोगी है, एवं नुकसानदायक हो सकती है।
4. इस विधि द्वारा बाह्य परजीवियों के उपचार करने का खर्चा भी ज्यादा आता है, क्योंकि इसमें कीटनाशक के घोल की मात्रा ज्यादा बनानी पड़ती है।
5. इस विधि को अपनाने के लिए एक उचित प्रकार के टैंक बनाने की जरूरत होती है।

(ग) धूड़ना/कीटनाशक पाऊडर लगाना (डस्टींग)– इस विधि मे कीटनाशक पाउडर पशु के शरीर के ऊपर हाथ से या डस्टर से लगाया जाता है।

डस्टिंग की उपयोगिता

1. यह कीटनाशक लगाने का काफी आसान तरीका है।
2. जिन पशुओं के शरीर पर घाव हैं, उनमें इस विधि द्वारा कीटनाशक आसानी से घाव को बचाकर लगाया जा सकता है।

डस्टिंग की अनुपयोगिता

1. यह तरीका भेड़ एवं बकरियों में गहरी तथा लंबी ऊन/बालों के कारण कारगर नहीं है।
2. इस विधि में कीटनाशक पाउडर काफी मात्रा में व्यर्थ भी हो जाता है।
3. डस्टिंग करने के दौरान डस्टिंग करने वाले व्यक्ति को काफी सावधानी बरतनी पड़ती है क्योंकि किटनाशक पाउडर का श्वसन क्रिया के कारण डस्टिंग करने वाले व्यक्ति के शरीर में जाने का खतरा बना रहता है।

(घ) साबुन/शैम्पू से नहलाना– पशुओं के बाह्य परजीवियों के उपचार के लिए आजकल कई प्रकार के साबुन एवं शैम्पू भी बाजार में उपलब्ध हैं। जिनका उपयोग करके भी पशुपालक अपने पशुओं को बाह्य परजीवियों से बचा सकते हैं।

साबुन/शैम्पू की उपयोगिता

1. ज्यादातर साबुन/शैम्पू चूंकि हर्बल उत्पाद हैं। अतः इनको बिना किसी प्रकार के हानिकारक प्रभाव के किसी भी प्रकार एवं उम्र के पशुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है।
2. यह उत्पाद ग्याभिन पशुओं एवं शरीर पर घाव वाले पशुओं पर भी बिना किसी नुकसान के लगाए जा सकते हैं।

साबुन/शैम्पू की अनुपयोगिता

1. यह काफी महंगे पड़ते हैं।
2. छोटे पशुओं (भेड़ एवं बकरी) जिनकी संख्या पशुपालकों के पास ज्यादा होती हैं, के लिए ज्यादा कारगर नहीं है।
3. इनके प्रयोग में समय ज्यादा लगता है।
4. यह उत्पाद सभी प्रकार के बाह्य परजीवियों के लिए ज्यादा कारगर नहीं हैं।

(ड.) टीका लगवाना

पशुपालक अपने पशुओं को बाह्य परजीवियों से बचाने के लिए आईवरमेक्टीन का टीका भी पशु चिकित्सक से लगवा सकते हैं। यह टीका खाल/चमड़ी के नीचे लगाया जाता है। पशुपालकों को चाहिए कि यह टीका हमेशा किसी पशु चिकित्सक से ही लगवायें।

टीके की उपयोगिता

1. ज्यादातर पशुओं में बाह्य परजीवियों से बचाने के लिए एक टीका ही कारगर सिद्ध होता है।

2. यह टीका पशु चिकित्सक की देखरेख में किसी भी पशु को उचित मात्रा में आसानी से चमड़ी के नीचे लगवाया जा सकता है।

3. यह टीका बाह्य परजीवियों के अलावा कई प्रकार के आंतरिक परजीवियों के खिलाफ भी असरदायक है।

टीके की अनुपयोगिता

1. यह टीका ऊपर बताए बए अन्य तरीकों के मुकाबले थोड़ा महंगा पड़ता है।

2. टीका लगाने से केवल पशु के शरीर पर मौजूद बाह्य परजीवियों का ही उपचार होता है, पशुशाला में उपस्थित परजीवियों को समाप्त करने के लिए कोई भी अन्य तरीका अपनाना पड़ता है।

बाह्य परजीवियों से पशुओं को बचाने के लिए निम्नलिखित कीटनाशक दवाइयों में से किसी का उपयोग किया जा सकता है।

क्रमांक	दवाई का नाम (कीटनाशक)	पशु के शरीर पर छिड़काव/डीपींग/डस्टिंग करने के लिए कीटनाशक की मात्रा	पशुशाला में छिड़काव के लिए कीटनाशक की मात्रा
1.	डैल्टामैथरीन	2–3 मी.ली./एक लीटर पानी में	5 मी.ली./एक लीटर पानी में
2.	साईपरमैथरीन	1 मी.ली./एक लीटर पानी में	20 मी.ली./एक लीटर पानी में
3.	मैलाथीयोन	10 मी.ली./एक लीटर पानी में	10 मी.ली./एक लीटर पानी में
4.	बेन्जीन हेक्सा क्लोराइड	5 प्रतिशत डस्ट/पाउडर शरीर पर लगाएं	पशुशाला में छिड़काव करें

बरसात के मौसम में पशुओं में होने वाले रोग व बचाव

देवेन्द्र सिंह[1], एन.के. महाजन[1] एवं अखिल कुमार गुप्ता[2]
[1]पशु जनस्वास्थय एवं महामारी विज्ञान, [2]पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

बरसात के मौसम में गर्मी से कुछ राहत तो मिलती है, परन्तु इस मौसम में बिमारी के कीटाणु तथा बिमारी फैलाने वाले जीव खूब फलते–फूलते हैं जिससे पशुओं में अनेक बिमारियों के फैलने की सम्भावना बनी रहती है। इसलिए कुछ सावधानियाँ बरतनी चाहिए जिससे हम अपने कीमती पशुओं को जानलेवा बिमारियों से बचा सकते हैं।

चिचड़ी रोग

चिचड़ी व अनेक तरह की मक्खियां बीमारी के किटाणु फैलाती हैं। गायों (विशेषकर विदेशी नस्ल की गायों) में थिलेरिया, बबेसिया, सर्रा जैसे रोग व भैंसों में बबेसिया व सर्रा रोग हो जाते है। चिचड़ियों को मारने के लिए 0.05 प्रतिशत सेविनो, मैलाथियान का घोल हर उस जगह पर छिड़कें जहां पर चिचड़ी पशु के शरीर पर व पशुघर में नजर आए या छिपे हो सकती हैं। चिचड़ियां अक्सर दिवार की दरार, गंदगी के ढ़ेर व अंधेरे कोनों में छिपती हैं। इसलिए पशु के आस–पास व पशु के शरीर पर यह दवाई अच्छी तरह छिड़क देवें। एक–एक चिचड़ियो को हाथ से तोड़ कर या खींच कर मारने से ज्यादा फायदा नहीं होगा। स्प्रे करने के बाद पशु को एक जगह बांध दें तथा उसे अपने शरीर को चाटने न दें (छिक्की बांध दें) और न ही पशु को नहलाएं। पशु को इससे पहले पानी अवश्य पिला दें।

पेट के कीड़ों से होने वाले रोग

पेट के कीड़े होने पर निम्न लक्षण देखने को मिलते है –

1. दस्त लगना / कब्ज होना
2. पानी उतरना
3. कमजोरी व चक्कर आना

ऐसे लक्ष्ण दिखने पर गोबर की जांच करवा लें तथा उचित दवा पशु चिकित्सक की सलाह से पशुओं को दो हफ्ते के अन्तराल पर दो बार पिलाएं। दवाई को दोबारा देना भी अति आवश्यक है।

गलघोंटू रोग

बरसात के बाद व सर्दियों में गाय–भैसो में गलघोंटू रोग आ जाता है। इस भयंकर बीमारी से बचने के लिए पशु पालकों ने मई–जून में इसके टीके लगवाने चाहिए। ये टीके हरियाणा सरकार की तरफ से निःशुल्क साल में दो बार लगवाए जाते हैं व इनसे कोई भी नुकसान नहीं होता।

मुंह–खुर रोग

पशुओं को मुंह–खुर रोग से बचाने के लिए सरकार द्वारा टीकाकरण पखवाड़े के दौरान मुफ्त टीके लगाए जा रहे हैं। जिस भी पशुपालक ने अपने पशुओं का टीकाकरण अभी तक नहीं करवाया वे अभी तुरंत नजदीक के पशु चिकित्सक से मिल कर मुफ्त टीका जरूर लगवा लें। पहले इस रोग से हरियाणा में बहुत पशु मर जाते थे परन्तु अब टीकाकरण के कारण इस बीमारी पर कुछ नियत्रंण पा लिया है।

गर्मी लगना

भैसां में काली मोटी चमड़ी होने व पसीना न आने की वजह से गर्मी का प्रभाव ज्यादा होता है। गर्मी से बचाव जरूरी है नहीं तो पशु के दूध, प्रजनन क्रिया पर बुरा असर पड़ता है। कभी–कभी तो भैंस गर्मी लगने से मर भी जाती है। भैंस को जरूर नहलाएं, यदि जोहड़ पर ले जाना पड़े तो घर पर साफ पानी पिलाकर ले जाएं।

खुजली व चर्म रोग

बरसात के मौसम में गाय, भैंसो में चमड़ी के रोग जो अलर्जी, फफूंदी यो चिचड़ी व अन्य चर्म कीटों की वजह से होते हैं पशु चिकित्सक के परामर्श से चिचड़ी व चर्मकीटों को मारने के लिए कीट नाशक दवा का स्प्रे करें तथा अलर्जी

के कारण हुए चर्म रोग का उचित इलाज करवाएं।

भैंसो के ब्याने का मौसम

अभी भैसों के ब्याने का मौसम शुरू हो गया है। ब्याने से पहले व ब्याने के बाद हरियाणा में हर भैस को 80–100 ग्राम लवण मिश्रण (मिनरल मिक्सचर) प्रतिदिन जरूर देवें। इससे पैदा होने वाला बच्चा स्वस्थ होगा। ब्याने के समय होने वाली दिक्कते कम हो जाएंगी तथा ब्याने के बाद मिल्क फीवर जैसे रोग से बचाव हो जाएगा। पैदा होते ही 1–2 घंटे में ही बच्चे को खीस पिलानी शुरू कर देवें ताकि नवजात पशु को रोग–निरोधक शक्ति मिल सके।

जूण

नवजात कटड़े–कटड़ियो में जूण का रोग हो जाता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार हरियाणा में पैदा होने वाले दो तिहाई कटड़े–कटड़ियो में जूण जरूर मिलते हैं। नवजात कटड़ों को पिपराजिन घोल पिलाते हैं व 15 दिन के बाद एक बार फिर दवा पिलाएं।

बरसात के मौसम में इस बात का पूरा ध्यान रखें कि पशु के रहने की जगह चिकनी, फिसलन वाली या दलदल वाली न हो ताकि पशु फिसले नहीं। गाय–भैसों में गिरने से हड्डी टूटने पर उसे ठीक करना बहुत मुश्किल होता है।

पशुओं में गर्भावस्था व दवाइयों का प्रयोग

गौरव गुप्ता[1], अमित कुमार[2], देवेन्द्र सिंह[3], सुजोय खन्ना[4], देवेन अरोड़ा[3] एवं तेज प्रकाश[5]

[1]पशु भैशज्य एवं विष विज्ञान विभाग, [2]पशु चिकित्सक, यमुनानगर,

[3]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग, [4]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग, [5]पशु शरीर रचना विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

गर्भावस्था का समय पशुओं में बहुत नाजुक समय होता है। कोई भी गलत दवाई माँ व गर्भास्थ शिशु के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। पशुपालक को इस दौरान अपने पशु के इलाज का खास ध्यान रखना चाहिए। कुछ दवाएं ऐसी हैं जो गाभिन पशु व गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य पर बुरा असर डाल सकती हैं। पशुपालक को इनकी थोड़ी जानकारी होनी चाहिए।

एंटीबायोटिक्स – ये वो दवाएं हैं जो बैक्टिरिया नामक सूक्ष्मजीवी को मारती हैं या उनकी बढ़ोतरी को रोकती हैं।

1. **कलोरेमफैनिकोलः** गर्भस्थ शिशु में ''ग्रे बेबी सिंड्रोम'' नामक बीमारी उत्पन्न करती है।
2. **डोक्सीसाईक्लीनः** अगर गर्भावस्था के आखिरी तिमाही में प्रयोग की जाए तो गर्भास्थ शिशु के दांतों के रंग पर बुरा असर डालती है। बच्चे के दांतों का रंग स्थायी रूप से पीला स्लेटी या भूरा हो सकता है।
3. **रीफैम्पीसीनः** नामक एंटीबायोटिक भी गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती है व प्रसव के पश्चात नवजात का सही विकास नहीं होता।
4. **स्ट्रैपटोमाईसिनः** यह एंटीबायोटिक अगर गाभिन पशु को लगाई जाए तो गर्भ में पल रहा बच्चा बहरेपन का शिकार हो सकता है।
5. **टैटरासाईक्लीनः** नामक एंटीबायोटिक भी गर्भस्थ शिशु के दांतों का रंग स्थायी रूप से भूरा कर सकती है। यह एंटीबायोटिक अगर दूसरी या तीसरी तिमाही में दी जाए तो गर्भस्थ शिशु की हड्डियों में जमा होने वाले कैल्शियम पर भी बुरा असर डालती है।
6. एंटीबायोटिक्स जैसे अमोक्सीसीलीन, एमपीसीलीन, अरीथरोमाईसिन, जैन्टामाईसिन, निओमाईसिन के भी गर्भावस्था के दौरान उपयोग से बचना चाहिए क्योंकि इन एंटीबायोटिक्स के गर्भावस्था के दौरान प्रयोग पर ज्यादा शोध नहीं हुआ है।

सैक्स हारमोनः ये वे दवाइयां हैं जो पशुओं के प्रजनन से जुडे अंगो जैसे अंडाशय, गर्भाशय इत्यादि पर असर डालती हैं।

1. **इस्ट्रोजनः** इस हारमोन का प्रयोग गर्भावस्था के दौरान नहीं करना चाहिए क्योंकि यह गर्भस्थ शिशु के दिल व हाथ–पैरों के विकास पर बुरा असर डालता है। अगर गर्भस्थ शिशु मादा है तो यह उसके जननांगों के विकास पर भी बुरा असर डालता है।
2. नोरएथीस्टीरोन, एथीस्ट्रीरोन और मीथाईल टैस्टोस्टीरोन नामक हारमोन अगर गर्भावस्था की पहली तिमाही में उपयोग किए जाते हैं तो यह गर्भस्थ मादा शिशु में नर शिशु जैसे अंगो का विकास करते हैं।
3. **नैनड्रोलोनः** यह हारमोन एक ऐनाबोलिक हारमोन है। यह हारमोन गर्भस्थ शिशु में मांसपेशियों के विकास को असामान्य रूप से बढ़ा देता है।
4. **पीपराजीन एस्ट्रोन सल्फेटः** का प्रयोग भी गाभिन पशुओं में नहीं करना चाहिए। कई शोध ये बताते हैं कि इस हारमोन के प्रयोग से गर्भस्थ शिशु में दिल व हाथ–पैरों में विकार पैदा होते हैं।

कोरटीकोस्टीरोएडस

1. **कोरटीसोनः** गर्भावस्था के दौरान इस के प्रयोग से बच्चा कटे हुए तालू व कटे हुए होंठ के साथ पैदा हो सकता है।
2. **प्रैडनीसोलोनः** इस स्टीरोएड के प्रयोग से मृत बच्चा

पैदा होने की संभावना बढ जाती है।

3. बीटामीथासोन, डैक्सामीथासोन व हाइड्रोकोरटीसोन के गर्भावस्था के दौरान उपयोग पर भी ज्यादा शोध नहीं हुआ है। इसलिए गर्भावस्था के दौरान जहां तक संभव हो इनका उपयोग नहीं करना चाहिए।

4. **ट्रायमसीनोलोनः** जिन मादाओं में गर्भावस्था के दौरान इसका प्रयोग होता है, उनके शिशु में एडरीनल नामक ग्रंथी के सही विकास में कमी आ सकती है।

कीमोथेराप्यूटिक दवाएँः यह दवाइयां कई प्रकार के रोगों में इस्तेमाल की जाती हैं।

1. **क्लोरोक्वीनः** नामक दवाई मलेरिया के उपचार के लिए प्रयोग की जाती है। यह गर्भस्थ शिशु में अन्य विकारो के साथ–साथ स्थायी बहरापन भी उत्पन्न कर सकती है।

2. **प्राईमाक्वीनः** नामक दवाई के पशुओं में गर्भावस्था के दौरान प्रयोग से गर्भ में पल रहे शिशु को पीलिया हो सकता है।

3. इसी प्रकार फयूराजोलीडोन व मैट्रोनिडाजोल नामक दवाईयॉ भी गाभिन पशु में प्रयोग के लिए पूरी तरह सुरक्षित नही हैं।

डाईयूरेटिक्सः इस दवाइयों का प्रयोग कई बीमारीयो में ज्यादा मूत्र बनाने के लिए होता है।

1. **एस्टिाजोलामाईडः** गर्भावस्था के दौरान इस दवाई के प्रयोग से गर्भस्थ शिशु में विकार हो सकते है व गर्भस्थ भ्रूण की मौत भी हो सकती है।

2. क्लोरथालीडोन व ट्रायमटैरिन के प्रयोग से गर्भस्थ व नवजात शिशु में पीलीया व सफेद कोशिकाओं की कमी हो सकती है। यह दवाइयां मादा के दूध में भी आती है और इस प्रकार दूध पीने वाले नवजात बच्चे में भी विकार उत्पन्न कर सकती है।

3. **फयूरोसेमाईडः** यह डाईयूरेटिक पशुओं में सबसे ज्यादा प्रयोग होने वाले डाईयूरेटिक है। इसके भी गर्भस्थ शिशु पर बुरे प्रभाव हैं। जो मादा पशु गर्भधारण करने योग्य है, उन्हें भी यह डाईयूरैटिक नहीं लगाना चाहिए।

4. **स्पाईरैनोलैक्टोनः** इस दवाई का प्रयोग भी गर्भावस्था के दौरान माँ व गर्भस्थ शिशु दोनों के लिए ही सुरक्षित नहीं है।

अन्य दवाएँ

1. **आईब्रोप्रोफेनः** यह दवाई गर्भस्थ शिशु पर बुरा असर डालती है

2. **नान स्टीरोएडल एंटी इनफलेमेटरी ड्रग्सः** जैसे की कीटोप्रोफेन, पैरासीटोमोल, मैलोक्सीकैम आदि के प्रयोग से प्रसव की क्रिया आगे सरक जाती है व गर्भावस्था का समय लंबा हो जाता है।

3. जहा तक संभव हो डाईजीपाम, पैपरोबामेट व ओक्सीजीपाम को प्रयोग गर्भावस्था के दौरान नहीं करना चाहिए।

4. फिनाईलब्युटाजोन व ओक्सीफैनब्यूटाजोन दवाइयों का स्त्राव दूध में भी होता है, जिससे नवजात के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है।

अतः उपरोक्त बिंदुओं से यह पता चलता है कि गर्भावस्था के दौरान पशु का इलाज काबिल पशु चिकित्सक द्वारा या उसकी निगरानी में ही कराना चाहिए और जहाँ तक हो सके दवाइयों के उपयोग से बचना चाहिए।

चूजों की देखभाल एवं प्रबन्धन

विशाल शर्मा[1], देवेन्द्र सिंह[2], सुभाशीश साहु[1], अखिल कुमार गुप्ता[3] एवं सुजोय खन्ना[1]

[1]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग, [2]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग, [3]पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

शुरू के चार से छः सप्ताह तक चूजों की देखभाल एवं प्रबन्धन को ब्रूडिंग कहते हैं। छोटे चूजे अपने शरीर को मौसम परिवर्तन व तापमान के अनुसार व्यवस्थित करने में अक्षम होते हैं तथा उनमें तापमान नियंत्रण प्रणाली भी अविकसित होती है। अतः छोटे चूजे तापमान के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं, जिस कारण से तापमान परिवर्तन मृत्यु दर का बढ़ा सकता है।

ब्रूडिंग के प्रकार/विधि

1. **प्राकृतिक ब्रूडिंगः** पहले देसी मुर्गियों की सहायता से किया जाता था। परन्तु अब कृत्रिम ब्रूडिंग का अधिकतर प्रयोग किया जाता है।
2. **कृत्रिम ब्रूडिंगः** कृत्रिम साधनों से तापमान नियंत्रण करने की प्रणाली को कृत्रिम ब्रूडिंग कहा जाता है। इस प्रक्रिया में तापमान को दो प्रकार से नियंत्रित किया जा सकता है।
   - क. पूरे ब्रूडिंग हाऊस में तापमान को नियंत्रित करके।
   - ख. ब्रूडिंग हाऊस में सिर्फ उस जगह का तापमान नियंत्रित करके, जहाँ पर चूजों को रखते हैं। यह तरीका अधिक प्रभावशाली है।

ब्रूडिंग हाऊस का स्थान

ब्रूडिंग हाऊस व फार्म के बीच कम से कम 100 मीटर की दूरी होनी चाहिए।

चूजों के आगमन से पूर्व प्रबन्धन

1. चूजे आने से एक सप्ताह पहले ब्रूडिंग हाऊस की सफाई अच्छी तरह से करें।
2. सभी बर्तनों और उपकरणों की अच्छी तरह से साफ कर किटाणु रहित करें।
3. चूजे आने से पहले ब्रूडर हाऊस का तापमान करीब 35° सें. होना चाहिए।
4. चूजो को ब्रूडर हाऊस में छोड़ने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि उन्हें मेरेक्स तथा रानीखेत बीमारी के टीके लगे हों।
5. अगर फर्श पक्का हो तो उसको धो दें। चूजे आने से पहले फर्श अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए।

चूजों को आगमन पर

जब चूजे हेचरी से फार्म पर आते हैं तो उनमें पानी की कमी तथा सफर का तनाव होता है। उस दशा में उनको इलैक्ट्रोलाईट्स अथवा गुड़ का पानी तथा विटामिन्स देने चाहिए। गर्मियों में चूजे रात को या सुबह के समय आने चाहिए जबकि सर्दियों में दिन के समय आने चाहिए।

ब्रूडिंग की आवश्यकताएँ

1. **तापमानः** प्रथम सप्ताह में ब्रूडिंग हाऊस का तापमान 35°C होना चाहिए। इसके बाद 2°C प्रति सप्ताह की दर से घटाते रहें जब तक तापमान 25°C पर आ जाए। सही तापमान होने पर चूजे आराम से घूमते रहते हैं एवं दाना–पानी ठीक खाते हैं। कम तापमान होने पर चूजे अंगीठी के पास इकटठे हो जायेंगे और अधिक तापमान होने पर दूर भागेंगे।
2. **हवाः** ब्रूडिंग हाऊस में हवा का आगमन सुचारू रूप से होना चाहिए। इसके लिए फार्म की छत के पास रोशनदानों की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि अमोनिया गैस एकत्रित न हो सके।
3. **आर्द्रताः** ब्रूडिंग हाऊस में आर्द्रता 40–60 प्रतिशत तक होनी चाहिए। इसके लिए ब्रूडिंग हाऊस में हवा का आगमन सुचारू रूप से होना चाहिए। अधिक

ज्यादा या कम आर्द्रता चूजों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। नमी की मात्रा ज्यादा होने पर खूनी दस्त की बिमारी, अमोनिया गैस का बनना एवं बिछावन का गीला रहना आदि समस्याएं आएगी। अगर नमी की मात्रा कम होगी तो धूल उड़ने से श्वसन रोग होंगे।

4. **बिजलीः** ब्रूडिंग हाऊस में बिजली की व्यवस्था सुचारू रूप से होनी चाहिए क्योंकि अन्धेरा होने पर चूजे खाना व पानी कम ग्रहण करेंगे तथा छोटे चूजे एक जगह इकट्ठे हो जाएंगे जिससे मृत्यु दर बढ़ सकती है।

5. **दानाः** राशन सन्तुलित, सस्ता और सभी पोषक तत्वों को पूरा करने वाला होना चाहिए। राशन में सस्ते व सुपाच्य अवयवों को मिलाना चाहिए जो कि नजदीक ही उपलब्ध हों। विभिन्न अवयवों को अच्छी तरह मिलाना चाहिए। राशन में खनिज मिश्रण भी सही मात्रा में मिलाना चाहिए। शुरु के एक दो दिन तक फीड को अखबार पर डालें। फीडरों की संख्या चूजों की संख्या तथा उम्र के हिसाब से होनी चाहिए। चिक फीडर की गहराई 7 से.मी. होनी चाहिए। 3–4 दिन की उम्र के बाद चिक–फीडर लगाने चाहिए। उसके बाद धीरे–धीरे चिक फीडर निकाल कर बड़े फीडर लगा दें। फीडर आसानी से भरे जाने वाले हों तथा उनमें से राशन ज्यादा बिखरना नहीं चाहिए।

6. **पानीः** हर समय साफ व ताजा पानी उपलब्ध होना चाहिए। पानी के बर्तनों के नीचे के स्थान को गीला न होन दें।

7. **भीड़ः** चूजों को उम्र के अनुसार स्थान दें। ज्यादा भीड़ से तनाव बढ़ता है। प्रारम्भ में ब्रूडिंग में एक चूजे के लिए 7 वर्ग इंच स्थान की आवश्यकता होती है। चार सप्ताह की उम्र पर एक वर्ग फुट तथा 6 सप्ताह पर 1.5 वर्ग फुट प्रति पक्षी स्थान की आवश्यकता होती है। यदि जगह कम होगी तो चूजे एक–दूसरे को काटने लगेंगे, पंख नोचने लगेंगे। इस वजह से खाने व पानी पीने में परेशानी होगी जिससे ज्यादातर चूजे कमजोर रह जाएंगे।

8. **बिछावनः** बिछावन गीला नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे अमोनिया गैस बनती है जिस वजह से श्वसन रोग हो जाता है जिससे चूजों की मृत्यु दर बढ़ सकती है। हर रोज बिछावन को फावड़े से हिलाते रहें ताकि सूखा रहे व गैस भी कम मात्रा में बनें।

दाने व पानी के लिए आवश्यक स्थान

(100 मुर्गियों के लिए)

उम्र (सप्ताह)	फीडर (से.मी.)	फीडर व पानी के बर्तन की जगह पानी के बर्तन (से.मी.)
0–2	250	25
3–6	400	100
6 के बाद	750	150

कटड़े–कटड़ियों में मृत्यु दर कम करने के उपाय

सुभाशीष साहू[1], विशाल शर्मा[1], देवेन्द्र सिंह[2] एवं अखिल गुप्ता[3]

[1]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग, [2]पशु जनस्वास्थ्य व महामारी विभाग

[3]पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

डेयरी व्यवसाय की सफलता कटड़े–कटड़ियों की उत्तम व्यवस्था तथा देखभाल से सीधे तौर पर सम्बन्ध रखती है। कटड़े–कटड़ियों में जन्म से 3 महीने तक मृत्यु दर 30–40 प्रतिशत तक होती है। अधिकतर मृत्यु कुपोषण, कुप्रबन्धन तथा विभिन्न रोगों के कारण होती है। निम्नलिखित उपायों द्वारा कटड़े–कटड़ियों की मृत्यु दर कम की जा सकती है–

जन्म के तुरन्त बाद नवजात की देखभाल

जन्म के तत्काल बाद नाक और मुंह साफ करना चाहिए। नवजात की छाती पर धीरे–धीरे मालिश करें जिससे कि उसे साँस लेने में आसानी रहे। पूरे शरीर को अच्छी तरह साफ करना चाहिए। कभी–कभी नवजात पशु के श्वसन स्थान में बलगम भरे होने के कारण उसका दम घूटने लगता है। ऐसे में कटड़े–कटड़ी के पिछले घुटनों को पकड़कर उल्टा कर देना चाहिए ताकि श्लेष्मा स्वयं बाहर निकल जाये।

साधारण हालात में नवजात 15–30 मिनट में अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है। यदि बच्चा उठने में कठिनाई महसूस करे तो उसे उठने में सहायता करनी चाहिए।

नाभि की देखभाल

रोगाणु नाल के रास्ते शरीर में पहुंचकर बीमारी फैला सकते हैं। नाल को दो इंच की दूरी पर धागे के साथ बाँध दें। बची हुई नाल को साफ कैंची/नयी ब्लेड से काट कर उस पर टिंक्चर आयोडिन लगाये जिससे कि नाल में संक्रमण को रोका जा सके।

समयपूर्वक खीस पिलाने का महत्त्व

नवजात के जन्म के बाद भैंस/गाय पहली बार जो दूध देती है वह खीस कहलाता है। नवजात में रोगों से लड़ने की क्षमता बहुत कम होती है। खीस पिलाना माँ से ऐसी रोग–प्रतिरोधक क्षमता बच्चे में पहुंचाने का एक प्राकृतिक तरीका है।

खीस नवजात पशु को प्रकृति द्वारा दिया गया एक अमूल्य अहार है। इसमें अतिरिक्त पोषक तत्व होते हैं जैसे दूध से 4–5 गुना प्रोटीन, 10 गुना विटामिन–ए और प्रचूर खनिज तत्त्व आदि। खीस में मौजूद अधिक ग्लोबूलिन की मात्रा पहले 3 महीने तक रोगों से बचाने में सहायक होती है। खीस हल्का दस्तावर होता है जिससे आंतों का गंदा मल साफ हो जाता है।

जन्म के आधे घंटे के भीतर नवजात पशु को खीस पिलाएं। खीस की मात्रा बच्चे के वजन के 1/10 भाग के बराबर होनी चाहिए। जिसे दिन में तीन से चार बार बांटकर देना चाहिए।

अगर किसी कारणवश खीस उपलब्ध ना हो तो किसी अन्य भैंस या गाय की खीस भी पिला सकते हैं। अन्यथा करीब 300 मि.ली. पानी में एक अंडा मिलाकर उसमें आधा चम्मच अरण्डी का तेल मिलाएं। इस घोल में 600 मि.ली. गाय का दूध, थोड़ी सी विटामिन–ए एवं 80 मि.ग्रा. आरियोमाइसिन मिलाएं। इस घोल को प्रत्येक बार ताजा बनाकर दिन में तीन बार बराबर–बराबर मात्रा में 5 दिन तक पिलायें।

समयपूर्वक कृमिनाशक दवा का उपयोग

आन्तरिक परजीवियों से बचाव हेतु पैदा होने के 7–10 दिन के अन्दर कृमिनाशक दवा का उपयोग करना चाहिए। तदान्तर तीन माह की आयु तक हर 20 दिन बाद

दवा पिलानी चाहिए। इसके पश्चात 6 माह की आयु तक दो माह के अन्तर पर तथा बाद में तीन माह के अन्तर पर कीड़े मारने की दवाई पिलानी चाहिए।

नवजात की आहार व्यवस्था

नवजात पशु के उचित विकास हेतु उन्हें दो माह की उम्र तक दूध पिलाना चाहिए। नवजातों की उत्तम आहार देने पर उनकी मृत्यु दर कम हो जाती है, भार वृद्धि अधिक होती है तथा यौवन जल्दी आता है। कटड़े–कटड़ी जैसे ही एक महीने का हो जाए, उसे कोमल घास और 100 ग्राम शिशु आहार प्रति दिन देना चाहिए। बच्चों का आहार यदि निम्न स्तर का होगा तो उनसे क्षमता अनुसार उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता।

आवास प्रबन्ध व्यवस्था

छोटे बच्चों को सर्दी से बचाना चाहिए। यदि छोटे बच्चों को खुले आवास में पालते हैं तो फर्श पर बिछावन का प्रयोग करें तथा रात के समय खुली जगह पर टाट लगाये। फर्श को गीला न होने दें तथा साफ रखें। नवजात बच्चों को सुरक्षित वातावरण में रखना चाहिये।

रोगों से बचाव व इलाज

सफेद दस्त, निमोनिया, बाह्य परजीवियों द्वारा उत्पन्न रोग कटड़े–कटड़ियो की मृत्यु का प्रमुख कारण बनते हैं।

सफेद दस्त से बचाव हेतु जन्म के बाद जितनी जल्दी हो सके खीस पिलानी चाहिए। निमोनिया रोग से बचाव हेतु नवजात को ठंड से बचायें। किसी भी रोग के निदान के लिए पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।

मुर्गीपालन में जैव सुरक्षा (Bio-Security)

तरुण कुमार[1], अश्वनी कुमार[2], एन.के. महाजन[3], एन.के. राखा[2]
[1]शैक्षणिक पशु चिकित्सालय, [2]पशु औषधि विज्ञान विभाग
[3]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

पूरे फार्म का बचाव करने तथा मुर्गी को बीमारी ग्रस्त न होने देने के लिए जो पद्धति प्रयोग में लाई जाती है वह जैव सुरक्षा उपाय (Bio-Security) कहलाती है। मुर्गी पालन व्यवसाय में रोग के ईलाज से रोग का बचाव अधिक लाभदायक होता है। बीमारी फैलने के पश्चात मृत्यु दर बढ़ जाती है जिस पर कई बार काबू पाना कठिन हो जाता है। जैव सुरक्षा उन प्रबन्धीय क्रियाओं को दिखाता है जो मुर्गियों के जीवन सुरक्षा को ध्यान में रखकर प्रयोग की जाती है।

साधारण भाषा में जैव सुरक्षा पूरे फार्म को हानिकारक व बीमारी पैदा करने वाले कीटाणुओं से बचाने का एक उपाय है। आजकल मुर्गियों की कुछ बिमारियां मनुष्यों को भी चपेट में ले लेती हैं। जैव सुरक्षा को अपनाने से न केवल मुर्गियों बल्कि मनुष्यों को भी बीमारी से बचाया जा सकता है। मुर्गी उद्योग को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने के लिए जैव सुरक्षा एक महत्वपूर्ण उपाय है।

जैव सुरक्षा का महत्त्व

बर्डफ्लू के कारण दुनियाभर में मुर्गियों में हुई अत्याधिक मृत्यु दर के उपरांत भारत में जैव सुरक्षा का महत्त्व बढ़ गया है।

जैव सुरक्षा का सिद्वांत

मुर्गीगृह के आसपास के वातावरण को पूर्ण रूप से कीटाणु तथा विषाणु रहित करना असंभव है परन्तु जैव सुरक्षा उपायों से हानिकारक कीटाणुओं की संख्या को इस हद तक कम किया जा सकता है कि वो मुर्गियों में बीमारी फैलाने में असमर्थ हो जाती है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि की कमी तथा खाद्य पदार्थ की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। इसलिए मुर्गी फार्म आकार में छोटे तथा मुर्गियों की संख्या में बढ़ते जा रहे हैं जिस कारण बिमारियों के फैलने की आशंका बढ़ी है। जैव सुरक्षा ऐसे में मुर्गियों को बचाने का सफल व सस्ता उपाय है। अधिक सरल भाषा में हम कह सकते हैं कि जैव सुरक्षा मुर्गियों को कीटाणुओं में जाने से रोकना तथा कीटाणुओं का मुर्गी फार्म पर आने से रोकने का उपाय हैं।

हानिकारक कीटाणुओं के फैलने का माध्यम

बिमारियों को फैलने से रोकने के लिए बीमारी पैदा करने वाले हानिकारक कीटाणु तथा विषाणु किस प्रकार एक स्थान अथवा फार्म से दूसरे फार्म पर पहुंचते हैं, यह पता लगाना आवश्यक है तभी उनको फैलने से रोका जा सकता है। एक फार्म से दूसरे फार्म पर बीमारी फैलने के मुख्य कारण इस प्रकार हो सकते हैं –

1. बीमार मुर्गियों का स्वस्थ फार्म पर आगमन ।
2. संदूषित व्यक्तियों, उपकरणों एवं वाहनों के आगमन द्वारा और मृत मुर्गियों को उचित तरीके से नष्ट न करने से वह स्वस्थ मुर्गियों में बीमारी का कारण बन सकती है।
3. कभी–कभी रोग से निजात पा चुकी मुर्गियों में रोग के जीवाणु रह जाते हैं जो कि स्वस्थ मुर्गियों में बीमारी फैला सकते हैं।
4. कुछ जंगली पक्षियों के सम्पर्क में आने पर मुर्गियों में बीमारी फैल सकती हैं जैसे रानीखेत एवं दूसरे विषाणु रोग।
5. गंदा दूषित पानी ग्रहण करने से।
6. दूषित भोजन से।
7. मुर्गी फार्म पर काम करने वाले व्यक्तियों के हाथों, जूतों तथा कपड़ों के माध्यम से भी बीमारी फैलाने वाले जीवाणु

एक फार्म से दूसरे फार्म पर आ सकते हैं।

8. कुछ बिमारियां मक्खी तथा मच्छरों द्वारा भी फैल सकती हैं।

9. चूजों में संक्रमित मुर्गियों से बीमारी का आगमन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हो सकता है।

जैव सुरक्षा के सिद्धांतः

जैव सुरक्षा के 3 मुख्य सिद्धांत होते हैं जिनका पालन करके मुर्गी फार्म को रोगमुक्त रखा जा सकता हैं या बीमारी का प्रकोप कम किया जा सकता है –

1. बीमार मुर्गियों का स्वस्थ से पृथक करना (पृथीकरण)
2. फार्म पर आगन्तुक तथा यातायात को सीमित करना
3. स्वच्छ वातावरण

1. पृथीकरण

पृथीकरण का अर्थ होता है मुर्गियों को एक ही फार्म में अलग–अलग वातावरण में रखना। यह प्रक्रिया मुख्यतः नए समूह को पुराने समूह में सम्मिलित करने से रोकने के लिए की जाती है ताकि बाहर से कोई जीवाणु आपके मुर्गी फार्म में प्रवेश न कर सकें। इस प्रक्रिया से पालतू मुर्गियों का बाहरी व्यक्ति अन्य जानवर तथा नए समूह से सम्पर्क होने से बचाया जा सकता है। कुछ बीमारियां पौढ़ मुर्गियों से नवजात चूजों में फैल सकती हैं। पृथीकरण विधि से हम पौढ़ तथा नवजात मुर्गियों को अलग–अलग रख कर बीमारी फैलने से रोक सकते हैं। जिन मुर्गियों में बीमारी के शुरूआती लक्षण दिखाई दें उनको भी तुरंत स्वस्थ मुर्गियों से अलग कर देना चाहिए अन्यता बीमारी सारे फार्म को चपेट में ले सकती है।

सब अंदर सब बाहर पद्वति

पूरे फलोक समूह को एक साथ खरीदना तथा एक साथ बेचने की प्रक्रिया को सब अन्दर सब बाहर पद्धति कहते हैं। यह पद्धति फार्म पर रोग के रोकथाम में कारगार सिद्ध होती है।

2. फार्म पर बाहरी व्यक्ति, उपकरण तथा यातायात सीमित करना

एक मुर्गी फार्म पर कार्य करने वाले व्यक्तियों, यातायात के साधन तथा उपयोग में लाये गए उपकरणों व अन्य सामान को संदूषण रहित किए बिना दूसरे मुर्गीगृह में प्रयोग में लाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि ये बिमारियों के फैलने का माध्यम हो सकते हैं।

(क) बाहरी व्यक्ति/आगुन्तक के प्रवेश को सीमित करना

- केवल फार्म पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को ही पालतू मुर्गियों के पास जाने की अनुमति होनी चाहिए।
- केवल घूमने मात्र के लिए फार्म पर आने वाले व्यक्तियों पर रोक लगानी चाहिए।
- बहुत आवश्यक होने पर ही आंगुतक को मुर्गियों के पास जाने की अनुमति होनी चाहिए परन्तु उससे पहले यह सुनिश्चित कर लें कि आगुन्तक जीवाणु रहित एवं स्वच्छ है। इसका प्रबन्ध फार्म पर भी किया जा सकता है। बाहरी कपड़ों को बदल कर तथा कीटाणुनाशक द्रव से हाथ साफ करके ही फार्म में आने की अनुमति होनी चाहिए। कभी भी बाहर से पहन के आए जूतों के साथ फार्म में प्रवेश ना करें इसके लिए रोगाणुनाशक से उपचारित गम बूट का इस्तेमाल करना चाहिए।
- एक वर्ग की मुर्गियों की देखभाल करने वाले व्यक्ति को दूसरे वर्ग में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(ख) वन्य जीव जन्तु बीमारी से संक्रमित हो सकते हैं जो कि पालतू मुर्गियों में फैल सकती हैं। इसलिए यह सुनिश्चित किया जाए कि बाहरी जंगली जीव जन्तु व पक्षियों का पालतू पक्षियों से सम्पर्क ना हो।

- फार्म पर पानी एकत्रित ना होने दें, यह जंगली वन्य पक्षियों को आकर्षित कर सकता है।
- पालतू पक्षियों के स्थान से अन्य पक्षियों के घोंसलों को तुरन्त हटा देना चाहिए।
- फार्म पर चूहे इत्यादि को मारने वाली दवाई का

प्रयोग सावधानीपूर्वक आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए ।

- कुत्ते, बिल्ली तथा अन्य जंगली जानवरों को फार्म से दूर रखना चाहिए।

(ग) यातायात सीमित करना

- आगन्तुक तथा यातायात के साधनों का सीमित प्रवेश होना चाहिए। फार्म के चारों तरफ तार या दीवार तथा आवागमन के लिए प्रवेश द्वार हो जिस पर लिखा हो आम रास्ता नहीं है। वाहनों के पहियों के साथ धूल मिट्टी में रोग फैलाने वाले जीवाणु फार्म पर प्रवेश कर सकते हैं।
- वाहनों को जितना हो सके मुर्गीपालन के स्थान से दूर रखना चाहिए। फार्म के गेट पर जीवाणुनाशक मिला पानी 2–4 मीटर जगह पर हो ताकि वाहन के पहिए उससे भीग जाएं।
- मुर्गी व अण्डों के परिवहन में लाए जाने वाले वाहनों के प्रवेश को फार्म पर वर्जित करना चाहिए अथवा उन्हें उचित तरीके से जीवाणु व कीटाणु रहित करके ही प्रयोग में लाना चाहिए क्योंकि वाहन बीमारी फैलाने का माध्यम हो सकते हैं।
- वाहनों की सीलिंग्स तथा टायरों की सफाई पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। वाहनों के जो उपकरण अलग किए जा सकते हैं उनको अलग करके साफ पानी व रोगाणुनाशक से साफ करना चाहिए।
- वाहन के अंदर तथा बाहर सभी जगह को रोगाणु मुक्त किया जाना चाहिए इसके लिए फिनाइल, कार्बनिक अमल व क्लोरीन का उपयोग किया जा सकता है।

3 स्वच्छता

मुर्गी फार्म में स्वच्छता पर अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। फार्म पर प्रयोग होने वाले उपकरण व अन्य सामान आस पास का वातावरण, पीने का पानी, भोजन/दाने का स्वच्छ होना अत्यावश्यक है। फार्म पर बिछावन की सफाई तथा मृत मुर्गियों का उचित तरीके से निष्पादन भी स्वच्छता के दो आवश्यक घटक हैं। बाहर से साफ दिखने वाली चीज रोगाणुयुक्त हो सकती है इसलिए रोगाणुनाशन स्वच्छता का महत्वपूर्ण घटक है। यह बीमारी पैदा करने वाले कीटाणुओं की संख्या कम करने में सहायक है जिससे फार्म पर बीमारी फैलने का खतरा कम हो जाता है।

(क) मुर्गीगृहों की सफाई व रोगाणुनाशन

- नए पक्षी लाने से पूर्व फार्म को पूर्ण रूप से साफ व रोगाणुमुक्त करना आवश्यक है। अगर संभव हो तो सभी अंदर सभी बाहर पद्धति का पालन करना चाहिए।
- 15 से 30 दिन फार्म को खाली रख देना चाहिए।
- मुर्गियों को निकालने के बाद बिछावन को फार्म से दूर गड्ढों पर या खेत में डलवा देना चाहिए। किसी भी स्थिति में उसको पुनः प्रयोग में न लाए।
- पक्के फर्श को 4 प्रतिशत सोडियम हाइड्रोक्साइड अर्थात 0.5 कि.ग्रा. मात्रा प्रति दस लीटर में मिलाकर साफ करना चाहिए। फर्श, छत तथा दीवारों को साफ करने के लिए सिंथैटिक फिनोल का भी प्रयोग किया जा सकता है।
- पोटेाशियम परमैगनेट (एक भाग), फार्मालीन (दो भाग) का धुआं भी मुर्गीगृह को रोगाणुमुक्त करने के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। धुएं के बाद शेड को 24–48 घंटे बंद रखना चाहिए।
- मुर्गीगृह में समय–समय पर चूहे, मक्खी, मच्छर व कीड़े आदि के नाश के लिए मैलीथीआन, सुमिथिऑन का छिड़काव करते रहना चाहिए।

(ख) उपकरणों का निर्जुतुकीकरण

मुर्गी फार्म पर प्रयोग में आने वाले उपकरणों को निरन्तर अन्तराल पर रोगाणुनाशक से साफ करके कीटाणुमुक्त करते रहना चाहिए। ये फार्म पर अगले फलोक के लिए बीमारी का स्त्रोत हो सकते हैं। किसी दूसरे फार्म से मंगवाए गए उपकरणों का प्रयोग नहीं करना उचित है अथवा यह सुनिश्चित करने के पश्चात की उपकरण पूर्ण रूप से रोगाणु मुक्त है, उनका उपयोग करना चाहिए। नए उपकरणों को भी अच्छे से साफ व रोगाणुमुक्त करके ही प्रयोग में लाएं। उपकरणों के निर्जतुकीकरण के लिए लाल दवाई, बाजार मे प्रचलित जीवाणुनाशक का प्रयोग किया जा सकता है।

(ग) पानी की स्वच्छता

पानी की स्वच्छता का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि मुर्गियों के शरीर का लगभग 55–75 प्रतिशत हिस्सा तथा अण्डे का 65 प्रतिशत हिस्सा पानी होता है। स्वच्छ पानी से अभिप्राय है पीने तथा उपयुक्त उत्पादन योग्य पानी। पानी द्वारा भी विभिन्न बिमारियां फैलती हैं इसलिए पानी की जैविक व रासायनिक जांच करवा कर आवश्यकतानुसार उसका निदान करना चाहिए। पानी को रोगाणुमुक्त करने के लिए 3 PPM क्लोरिन (5 कि.ग्रा. ब्लीचिंग पाउडर 1000 लीटर पानी में), आयोडिन तथा आयोडोफार का उपयोग सुरक्षित होता है। क्लोरिन डाइआक्साइड भी एक प्रभावशाली रोगाणुनाशक है।

(घ) फार्म पर काम करने वाले व्यक्तियो की स्वच्छता

फार्म पर काम करने वाले व्यक्तियों की साफ–सफाई का उतना ही महत्त्व है जितना कि फार्मगृह की क्योंकि व्यक्ति भी मुर्गियों में बीमारी फैलने का माध्यम हो सकते हैं। इसलिए प्रतिदिन के कार्यों में लिप्त व्यक्तियों को भी जैव सुरक्षा उपाय अपनाने चाहिए। मुर्गी फार्म में प्रवेश करने से पहले सभी व्यक्तियों को अपने हाथ पैर साबुन या डिटर्जेन्ट से अच्छी तरह से साफ करने चाहिए। फार्म पर बाहरी वस्त्रों व जूतों में प्रवेश ने करके फार्म के लिए बने कपड़े जैसे अप्रेन, गमबूट, टोपी, मास्क इत्यादि का उपयोग करें। इन कपड़ों का रोगाणुनाशन करके प्रयोग में लाना चाहिए।

(ड़) मरे हुए पक्षियों का निष्पादन

मृत पक्षी स्वस्थ पक्षियों में बीमारी फैलने का माध्यम हो सकते हैं। मक्खी, मच्छर तथा अन्य जानवर जैसे कुते, बिल्ली बीमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलाने का कार्य करते हैं। अतः मृत मुर्गियों का स्वच्छता से निपटान आवश्यक है। मृत मुर्गियों को अप्रैन तथा दस्ताने पहन कर ही छूना चाहिए वर्ना मुर्गियों की कुछ बिमारियाँ मनुष्यों को भी प्रभावित कर सकती हैं।

मृत मुर्गियों को छूने के उपरांत स्वस्थ मुर्गियों के फार्म पर रोगाणुनाशन किए बिना प्रवेश न करें। इस्तेमाल किए गए कपडे, अप्रैन, जूते इत्यादि को रोगाणुनाशन के उपरान्त ही उपयोग में लाएं। मृत मुर्गियों के निपटान का सबसे उचित तरीका है उन्हें गहरे गढ्ढे में चूने के साथ गाड़ देना अथवा जला देना।

दुधारू पशुओं में ब्याते ही या कुछ दिन बाद पक्षाघात (मिल्क–फिवर) : क्या करें क्या ना करें?

देवेन्द्र सिंह[1], सुजोय खन्ना[2], तेज प्रकाश[3], गौरव गुप्ता[4] एवं अखिल कुमार गुप्ता[5]

[1]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग, [2]पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन विभाग, [3]पशु शरीर रचना विज्ञान विभाग, [4]पशु भैशज्य एवं विष विज्ञान विभाग, [5]पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)।

मिल्क–फीवर क्या है? यह एक पोषण संबन्धी आपचयी रोग है जिसमें पशु में ब्याने के बाद कैल्शियम की कमी के कारण मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं व पशु उठ नहीं पाता और पड़ा रहता है।

इस बीमारी के शीर्षक में 'फीवर' (यानी बुखार) एक मिथ्य है, क्योंकि इसमें बुखार नहीं आता बल्कि पशु के शरीर का तापमान सामान्य से भी कम रहता है व पशु ठंडा प्रतीत होता है। यह विषमता ज्यादा उत्पादन/ज्यादा दूध वाले पशुओं में होती है व यही पशु इसके प्रति ज्यादा उन्मुख होते हैं। यह विषमता सामान्यतः ब्याने के तुरन्त बाद या कुछ दिन बाद (जब पशु का दूध–उत्पादन उच्चतम स्तर पर हों) देखने को मिलती है।

मुख्य कारक

असामन्यता से ग्रसित हर पशु में इसका कारक ब्याने से पूर्व या ब्याने के तुरन्त (या कुछ दिन बाद) खून में कैल्शियम के स्तर में अत्याधिक गिरावट है। जब यह स्तर अत्याधिक गिर जाता है, तब यह विषमता उभरती है व पशु की मांसपेशियों का पक्षाघत होता है व पशु उठने में असमर्थ हो जाता है। ब्याने के बाद शरीर में कैल्शियम की मांग एकदम से बढ़ती है क्योंकि पशु को दूध/खीस उत्पादन करना होता है। इस गिरावट के कारण ही पशु में यह विषमता उत्पन्न होती है।

ब्याते ही कुछ दिनों में पशु अपने उच्चतम दुग्ध–उत्पादन पर पहुंच जाता है जो कैल्शियम की मांग को उसकी उपलब्धता से तीन गुना अधिक बढ़ा देता है। इस बढती मांग को शरीर एकदम से कई बार पूरा नहीं कर पाता व अन्ततः उसमें इस विषमता के लक्ष्ण आते हैं।

इसके अतिरिक्त ब्यांत के अग्रिम समय में पशु की भूख व खुराक कम हो जाती है व उसकी पाचन प्रणाली के अंगों (आंतड़ियों आदि) की गतिशीलता कम हो जाती है जो अन्ततः पशु की कुल खुराक ही 15–20 प्रतिशत कम कर देती है। अन्ततः कैल्शियम की खपत भी कम हो जाती है क्योंकि इस समय पेट/भोजन ही कैल्शियम का मुख्य स्त्रोत रह जाता है।

मुख्य लक्ष्ण

1. शुरूआती समय में पशु उत्तेजित दिखता है, लंगड़ा कर चलता है व पैर अकड़े–अकड़े से दिखते हैं।
2. इसके पश्चात पशु खड़ा होने में असमर्थ रहता है व सुस्त नजर आता है।
3. पशु का सिर पेट की ओर रहता है व नाक/नथूने सुखे दिखते हैं।
4. इलाज न मिलने पर पशु सुन्नपात (कोमा) में चला जाता है व मृत्यु भी हो जाती है।

बचाव व रोकथाम

1. पशु का जल्द से जल्द ईलाज व देखभाल अति आवश्यक है।
2. पशु–चिकित्सक के परामर्श से नस में बहुत धीमी गति से कैल्शियम (कैल्शियम बोरोग्लूकोनैट) लगवाएं। ध्यान रहे कि तेज गति से या फिर ज्यादा मात्रा में सीधे नस में कैल्शियम हृदयघात कर सकता है, अतः पशु–चिकित्सक की निगरानी में ही ईलाज करवाएं और आधी खुराक खाल के नीचे (Sub-Cutaneous) लगवा लें।
3. ब्याने से एक माह पूर्व (23 दिन पहले) कैल्शियम (पिलाने के स्वरूप में या फिर कोई और) पूर्णतः बन्द कर दें, क्योंकि यह शरीर को खुद की आंतरिक कैल्शियम बनाने व इस्तेमाल करने में बाधा करेगा।
4. पशु को खाने में संतुलित आहार दें (हरे चारे समेत) व नियमित रूप से खनिज–मिश्रण का प्रयोग करें।

मुर्गी पालन व्यवसाय में रोग नियन्त्रण प्रबंधन

महावीर चौधरी[1], जयंत गोयल[2], हिमांशु शर्मा[3] एवं संदीप सांगवान[1]

[1]पशु अनुवांशिकी विज्ञान विभाग, [2]पशु विज्ञान विस्तार शिक्षा विभाग,

[3]पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)।

रोगमुक्त मुर्गी पालन इस व्यवसाय की पहली प्राथमिकता है। यह मुर्गी पालन में मुनाफा तथा घाटे को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। मुर्गियों में कुछ ऐसे रोग होते हैं जो बहुत तेजी से फैलते हैं और जिससे इस व्यवसाय को बहुत नुकसान पहुंचता है। बहुत सारे रोग ऐसे होते हैं जिनके लक्षण मिलते–जुलते होने के कारण रोग नियन्त्रण में रोग होने के बाद उपचार करने के बजाए उसकी पहले ही रोकथाम महत्त्व रखती है। यानि की रोग नियन्त्रण में रोग उपचार से रोग प्रतिबंध एक अच्छा उपाय होता है। इसके लिए कुछ संक्रामक तथा असंक्रामक रोगों के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। रोग नियन्त्रण के प्रबंधन करने के लिए निम्न बिन्दुओं के बारे में जानकारी होनी चाहिए –

(क) रोगों की वजह से हानिः रोग उद्वेग या रोग फैलने से मुर्गी पालन व्यवसाय में हानि होती है। जो इस प्रकार हैं :–

1. मृत्यु दर बढ़ने से मुर्गियों की संख्या घट जाती है।
2. मुर्गियों का उत्पादन घट जाता है।
3. रोग प्रादुभवि काल में अंडे व मांस का उत्पादन घट जाता है।
4. बची हुई शेष मुर्गियां रोग के वाहक का कार्य करती हैं व भविष्य में नुकसान होने की सम्भावना रहती है।
5. ब्रायलर मे धीमी बढ़ोतरी के कारण वजन में कमी।
6. समान्य अंडों के उत्पादन मे कमी आ जाती है।
7. हैचरी उद्योग मे संक्रमण फैलने से स्वस्थ चूजे निर्माण में मुश्किल होती है।
8. कुछ रोग ऐसे होते हैं जो मुर्गियों से मनुष्य में भी फैल सकते हैं जिन्हें जूनोटिक रोग कहा जाता है।

(ख) रोग की उत्पति व प्रसार के कारणः विभिन्न संक्रामक कीटाणु जैसे विषाणु, जीवाणु, कवक, क्रमि, प्रोटोजोओनस व पोषण कमियां रोग उत्पति व प्रसार के कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त सुविधाओं की कमी, तनाव, खराब हवादारी, साफ–सफाई, अयोग्य टीकाकरण, दूषित खुराक और पानी, स्थान की कमी, अयोग्य लीटर व्यवस्था और अकुशल प्रबंधन आदि बीमारी फैलने के कारण होते हैं। इन बिन्दुओं के बारे में अच्छी जानकारी होने से मुर्गी पालन व्यवसाय से मुनाफा कमाया जा सकता है।

(ग) रोग प्रसार की विभिन्न पद्धतियाँः रोग एक मुर्गी फार्म से दूसरे फार्म तक कई तरीकों से फैलते हैं। इसमें बहुत सारे जीवित व निर्जीव वाहक होते हैं। कुशल प्रबंधन इन वाहकों का पता लगाकर रोग नियंत्रण कर सकते हैं।

(घ) अंडों द्वारा रोग प्रसारः अंडों द्वारा फैलने वाले रोग मुर्गी के अंडाशय से उत्पन्न होते हैं। इस तरह के रोग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में फैलते हैं। इसके उदाहरण इस प्रकार है :–

1. साल्मोनेला (पूलोरम) रोग
2. माइकोप्लाज्मा संक्रमण
3. संक्रामक श्वसनी शोध
4. फाऊल टाइफाईड
5. रानीखेत रोग आदि

इन रोगों पर नियंत्रण के लिए अंडा संग्रहण से लेकर हैचरी स्तर पर खास सावधानियाँ रखनी होती हैं।

(ड़) हैचरी उत्पन्न रोग : मुर्गी के शरीर से अंडा निकलते समय मल–मूत्र से दूषित हो जाता है। जिससे कई

बीमारियाँ फैल सकती हैं जो कि हैचरी द्वारा प्रसार होने वाली बिमारियाँ हैं। ऐसे कुछ रोग इस प्रकार हैं–

1. स्टेफाइलोकोकोसिस
2. स्ट्रेप्टोकोकोसिस
3. इश्चेरिशिया कोलाई संक्रमण
4. साल्मोनेलोसिस
5. केंडीडियोसिस

इन रोगों को नियंत्रित करने के लिए बेहतर हैचरी प्रबंधन की जरूरत होती है। अंडों का चयन सावधानी से करना होता है। अंडों को संक्रमण रहित करने के लिए वैज्ञानिक तरीके अपनाए जाते हैं, जिसके लिये मुर्गी रोग विशेषज्ञ से परामर्श लिया जा सकता है।

(च) फार्म द्वारा संक्रमण : पुराने फार्म या जिस फार्म को किटाणु रहित न किया हो, ऐसे फार्म पर मुर्गी पालन करने से संक्रमण फैलने का खतरा बना रहता है। संक्रामक बरसल रोग, साल्मोनेलोसिस व मरैक्स जैसे रोग फैल सकते है। अतः फार्म मे संक्रमण उन्मूलन को दक्षता से करना चाहिए, इसके लिए बाजार में बहुत सारे रसायन उपलब्ध हैं।

(छ) यांत्रिक कीटाणुवाहक द्वारा प्रसारः यह कीटाणुओं के लिए वाहक का काम करते है व रोग को एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं। उपकरण, मनुष्य, पशु–पक्षी आदि फार्म मे प्रवेश पर सावधानी रखनी चाहिए।

रोग नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण प्रबंधन उपायः

मुर्गी पालन व्यवसाय मे रोग नियंत्रण करने के लिए बहुत सारी जानकारी ध्यान में रखनी जरूरी होती हैं। ब्रीडर्स हेचरी प्रबंधन, खाद्य उत्पादन, मुर्गी व अंडों के स्तर पर, टीके व दवाई विक्रेता, इन सभी के स्तर पर उचित सावधानी रखनी होती है। नीचे दिये गए महत्वपूर्ण प्रबंधन उपाय करने से मुर्गी पालन को रोग मुक्त किया जा सकता है –

1. रोगमुक्त चूजों का उत्पादन– हैचरी व ब्रीडर्स स्तर पर साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखें।
2. मुर्गी फार्म का उचित प्रबंधन व साफ–सफाई।
3. दो फार्म के बीच में मुर्गी स्थानान्तर नही करना चाहिए या फिर उन्हे अलग घर में रखना होता है।
4. रोग प्रसार पर सही नियंत्रण के लिए एक ही समय सब पक्षी फार्म पर अंदर लेना और एक समय सबको बाजार भेजना, यह पद्वति अपनाई जाए (सब अन्दर सब बाहर पद्वति)।
5. एक फार्म से उपकरण को दूसरे फार्म के लिए उपयोग में नहीं लाना चाहिए।
6. अनावश्यक रूप से मनुष्य के फार्म में आने–जाने पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।
7. समय–समय पर खाद्य तत्वो की जांच जरूरी है। एफलोटाक्सिन के लिए जांच करवाएं।
8. समय–समय पर मुर्गीयों का रोग परीक्षण करवाएं।
9. आन्तरिक व बाह्य परजीवियों की रोकथाम के उपाय करें।
10. रहने का आवास व वातावरण आरामदेह होना चाहिए। मुर्गियों में तनाव को कम करने के उपाय करने चाहिएं।

अतः उपरोक्त सभी उपाय करने से मुर्गी पालन व्यवसाय को रोगमुक्त किया जा सकता है।

पशुओं में प्राथमिक एवं घरेलू उपचार

जयंत गोयल[1], महावीर चौधरी[2], मृदुला तिवारी[3], हिमांशु शर्मा[4] एवं सुजॉय खन्ना[5]

[1]पशु विज्ञान विस्तार शिक्षा विभाग, [2]पशु अनुवांशिकी विज्ञान विभाग,
[3]पशु चिकित्सक, उत्तराखण्ड, [4]पशु सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग, [5]पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

अधिकांश पशु पालकों के पास अपने रोगी पशुओं के उपचार के लिए बाजार में उपलब्ध दवाइयों को खरीदने की क्षमता नहीं होती हैं। साथ ही पशु को चिकित्सक के पास ले जाने के लिए भी शुल्क की आवश्यकता होती हैं जो वे वहन नहीं कर पाते हैं। इसलिए वे गांव में ही उपलब्ध अनभिज्ञ एवं झोलाछाप चिकित्सकों से अपने पशु का उपचार कराते हैं जिसके कारण कई बार उनका बहुत नुकसान हो जाता है। पशुपालकों को साधारण बिमारियों की जानकारी स्वयं होनी चाहिए जिसके आधार पर वे अपने पशु को घरेलू चिकित्सा प्रदान कर सकें। साथ ही कुछ देसी दवाइयां जिनकी गुणवत्ता वैज्ञानिक रूप से रखी जा चुकी हैं उनकी भी जानकारी पशुपालकों को होनी चाहिए। इसी संदर्भ में घरेलू उपचार से सम्बन्धित कुछ जानकारियाँ दी गयी हैं।

ज्वर, बुखार

- ज्वर से पीड़ित पशु को साफ व हवादार पशुगृह में रखना चाहिए तथा फर्श को सूखा रखना चाहिए।
- पक्के फर्श पर पशु के नीचे भूसा अथवा घास बिछा देनी चाहिए।
- पशु को अधिक से अधिक पानी पीने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- मीठा सोडा (सोडियम बाइकार्बोनेट) 15 ग्राम, नौसादर 15 ग्राम, सैलीसिलिक एसिड 15 ग्राम, 500 मि.ली. पोटैशियम नाइट्रेट, 30 ग्राम चिरायता का महीन चूर्ण और गुड़ 100 ग्राम लगभग 200 ग्राम पानी में घोल कर गाय या भैंस को 8 से 10 घंटे के अंतर पर पिलाना चाहिए।

कब्ज (कॉंस्टिपेशन)

- पशु को 60 ग्राम काला नमक, 60 ग्राम सादा नमक, 15 ग्राम हिंग, 50 ग्राम सौंफ लेकर 500 ग्राम गुड़ में मिलाकर दिन में दो बार देना चाहिए।
- इसके अलावा 500 ग्राम मैगसल्फ, 250 मि.ली. अरंडी का तेल भी देना चाहिए।

फोघ (एबसेस)

- अक्संद के पत्ते को सरसों के तेल के साथ चुपड़ कर फोड़े पर बांधने से वह फूट जाता है।
- इसके बाद नीम या करंज का तेल अथवा धतूरे के पत्तों को पीस कर हल्दी में मिला कर लगाने से भी लाभ मिलता है।

घाव (वून्ड)

- प्रायः चोट लगने या दुर्घटनाग्रस्त होने पर शरीर पर घाव हो जाते हैं।
- यह दो प्रकार के होते हैं– एक जिनमें चमड़ी फटी न हो और दूसरा जिनमें चमड़ी फट गयी हो।
- जब चमड़ी नहीं फटती तो चोट लगने की जगह पर सूजन आ जाती है या फिर उसके नीचे खून का जमाव हो जाता है। इस दौरान अगर बर्फ या ठण्डे पानी से सिकाई की जाए तो वह फोघ नहीं बन पाता।
- पुराने घाव पर गर्म पानी से सिकाई अधिक फायदेमंद होती है।
- खुली हुई चोट यदि साधारण हो तो उसे साफ करके कोई भी एंटीसेप्टिक क्रीम लगानी चाहिए।
- यदि खून बह रहा हो तो टिंक्चर बैंजोइन लगाना फायदेमंद है।
- घाव पर नीम या फिर बबूल के पत्ते अथवा इनकी छाल का पाउडर लगाने से भी आराम मिलता है

- गुम चोट में हल्दी, गुड़ तथा फिटकरी का पेस्ट लगाने से भी फायदा मिलता है।
- यदि घाव बड़ा हो और उसके साथ खून एवं पीप भी आ रही हो तो चिकित्सक से आवश्यक सलाह लेनी चाहिए।

जलना (बर्न)

- जले हुए भाग पर ठंडा पानी डालना चाहिए उसके बाद जैतून अथवा नारियल के तेल का लेप लगाना चाहिए।
- जले हुए भाग पर बुझे चूने का पानी एवं अलसी का तेल बराबर भाग में मिलाकर लगाना चाहिए जो अति लाभदायक है।

रक्तस्त्राव (हिमोरेज)

- कटी हुई रक्त नलिका पर दबाव देना चाहिए ताकि रक्त का बहना रूक जाये।
- कटे हुए स्थान को 2–3 सें.मी. ऊपर व नीचे से बांधने से खून रिसना बंद हो जाता है।
- रक्तस्राव वाले स्थान पर बर्फ या ठण्डे पानी को लगातार डाल कर भी खून का बहना रोका जा सकता है।
- यह ऐसा संभव न हो तो मोटे कपड़े को फिटकरी के घोल में भिगो कर कटे हुए स्थान पर जोर से दबाकर रखना चाहिए।

योनि पथ या बेल का निकलना (प्रोलैप्स ऑफ वैजाइना/यूटेरस)

- इसका मुख्य कारण कैल्शियम व फॉस्फोरस की कमी होता है। अतः गाभिन पशु को 50–100 ग्राम खनिज मिश्रण नित्य ब्याने के 1 से 2 महीने पूर्व देते रहना चाहिए जिससे बेल निकलने की संभावना कम रहती है।
- अगले पैर नीचे स्थान पर व पिछले पैर ऊंचे स्थान पर रखने चाहिए जिससे उस पर जोर कम पड़े।
- अगर बेल निकल जाती है तो उसे डिटॉल या लाल दवा की 1 : 100 के अनुपात वाले घोल से साफ करके उसे हाथ से अन्दर कर देना चाहिए।
- बार–बार बेल निकलने पर निकटतम पशु चिकित्सक से संपर्क स्थापित करना चाहिए।

दुधारू पशुओं में थनैला रोग, उपचार एवं रोकथाम

जयंत गोयल[1], मृदुला तिवारी[2], महावीर चौधरी[3] एवं सुजॉय खन्ना[4]

[1]पशु विज्ञान विस्तार शिक्षा विभाग, [2]पशु चिकित्सक, उत्तराखण्ड,
[3]पशु अनुवांशिकी विज्ञान विभाग, [4]पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)।

परिचय

- यह एक अयन को प्रभावित करने वाला संक्रामक रोग है जो समस्त पशु प्रजातियों के मादा पशुओं को प्रभावित करता है।
- ब्यांत के बाद प्रथम सप्ताह में ही रोग का पता चलता है।
- इसमें अयन का प्रभावित हिस्सा सूजन और दर्द से प्रभावित होता है तथा अति प्रभावित स्थिति में गर्म महसूस होता है।
- दूध की गुणवत्ता खराब हो जाता है।
- अयन के प्रभावित हिस्से से प्राप्त दूध में भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं।
- दूध छेने के पानी जैसा हो जाता है और उसमें दूध के थक्के, खून तथा पस के थक्के भी नजर आते हैं।
- शारीरिक तापमान भी बढ़ सकता है।
- अधिकांशतः यह रोग पशुओं में जीवाणु संक्रमण के कारण होता है तथा अनेक प्रकार के जीवाणु इस रोग के कारक हो सकते हैं।
- रोग का प्रसारण संक्रमित पानी, बिछावन, उपयोग में लाने वाले उपकरण तथा दूध दोहने वाले के हाथों से हो सकता है।
- सामान्यतः दुग्धकाल के प्रारंभ या अंत में यह संक्रमण होता है।
- व्यस्क तथा अधिक दूध देने वाले पशु इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं।
- बाड़े में पाई गई अस्वच्छता, अयन या थान की चोट तथा अपूर्ण दूध निकालना पशु को रोग के प्रति संवेदनशील बनाते हैं।

रोग के लक्षण

- यह रोग तीव्र, दीर्घकालिक या लक्षणहीन अवस्था में हो सकता है।
- रोगी पशु का दूध गाढ़ा तथा मवाद के जैसा हो जाता है। अयन पर सून का फैलाव एवं दर्द हो सकता है।
- कभी–कभी प्रभावित पशु ज्वर से प्रभावित होता है।
- दूध में फाईब्रिन के थक्के तथा रक्त पाया जा सकता है।
- प्रभावित अयन से दूध आना कम हो जाता है या बंद हो जाता है।
- समुचित चिकित्सा न मिलने से प्रभावित अयन कड़ा और पत्थर के जैसा होकर बेकार हो जाता है।
- कभी–कभी गैंगरीन बन जाने से थान टूट कर गिर जाता है।

चिकित्सा (ट्रीटमेंट)

- प्रभावित पशु को तत्काल अन्य पशुओं से अलग करें।
- रोग की संभावना की स्थिति में पशु चिकित्सक से संपर्क करें।
- उपचार के लिए अयन को धोकर साफ हाथों से दूध निकालें एवं अयन को पूरा खाली करें। इसके उपरांत थनों को 1 प्रतिशत बोरिक एसिड, 0.01 प्रतिशत लाल दवाई या 1 प्रतिशत फिटकरी के घोल से धोएं। 1 प्रतिशत नमक के साथ मक्खन से थन की मालिश भी करें।
- थनों में या आन्त्रेत मार्ग में एंटीबायोटिक का प्रयोग शोधरोधी औषधियों के साथ लाभकारी है।
- ऐम्पिसिलिन, एमोक्सीसिलिन, क्लोक्सासिलिन, पेनिसिलिन –जी, ईरीथ्रोमाइसिन, टाईलोसिन, नियोमाइसिन,

जेन्टामाइसिन तथा सल्फा वर्ग की औषधियां लाभकारी हैं।

- दूध जांच केंद्र से दूध की जाँच करवाकर ही एंटीबायोटिक का प्रयोग करें।

रोकथाम (प्रीवेंशन)

- पशु बाड़े में समुचित सफाई की व्यवस्था करें।
- आवश्यकता से अधिक पशुओं को पशु बाड़े में न रखें।
- दूध का पूर्ण दोहन करें एवं दोहन के पहले और बाद में अयन की धुलाई आवश्यक रूप से करें। दुहारे के हाथ व थनों को धोने के लिए लाल दवाई के घोल का उपयोग करना चाहिए।
- दूध निकालते समय अंगूठे का प्रयोग न करें। फुल हैंड प्रणाली का प्रयोग करें।
- रोगी पशु से प्राप्त दूध का बाड़े से दूर किसी गड्ढे में निस्तारण करें।
- रोगी पशु का दूध अंत में निकालें।
- समय–समय पर दूध का परीक्षण कराना चाहिए। बाजार मे किट भी उपलब्ध हैं।
- दूध निकालने के बाद एंटीसेप्टिक डीप घोल का प्रयोग करें।
- पशुओं का बिछावन गीला न होने दें व समय–समय पर बदलते रहें।
- कलिफोर्निया मैस्टिटिस टेस्ट का उपयोग करें।
- हर पशु का दूध स्ट्रिप कप विधि से परखना चाहिए।
- थनों मे चोट या घाव होने पर उसका तुरन्त इलाज करना चाहिए।
- थनैला रोग की अवस्था मे यदि थनों से दूध न निकले तो थन मे कोई तेज धार वाली चीड़, तार या माचिस की तिल्ली न मारें।

पशुओं में टिटेनस या धनुस्तंभ

अश्वनी कुमार[1], लोकेश[2], राजेन्द्र यादव[1] एवं देवेन्द्र सिंह[3]

[1]पशु औषधि विज्ञान विभाग, [2]पशु शल्य चिकित्सा विज्ञान विभाग,

[3]पशु जनस्वास्थ्य एवं महामारी विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

टिटेनस या धनुस्तंभ मांसपेशियों में ऐंठन होने की एक अवस्था को कहा जाता है। यह सभी पालतू पशुओं एवं मनुष्यों का एक अत्यंत घातक एवं संक्रामक रोग है, जिसमें कंकालपेशियों को नियंत्रित करने वाली तंत्रिका कोशिकाएं प्रभावित होती हैं। यह रोग एक जीवाणु क्लोस्ट्रीडियम टिटेनाई (*Clostridium tetani*) के बहिः आविष (Exotoxin) टिटेनोलायसीन और टिटेनोस्पाजमीन के कारण होता है। अति संवेदिता (Hyperaesthesia) अपतानिका/ऐंठन और आक्षेप (Convulsions) इस रोग की विशेषताएं हैं।

कारण व संक्रमण

यह रोग मिट्टी में रहने वाले बैक्टीरिया (क्लोस्ट्रीडियम टिटेनाई) से घावों के संक्रमित होने के कारण होता है। यह जीवाणु पूरे वातावरण में, आमतौर पर मिट्टी, धूल और जानवरों के मल में पाया जाता है। यह मिट्टी में लंबे समय तक छिपा रह सकता है। शरीर में जीवाणु का प्रवेश आमतौर पर फटे हुए गहरे जख्म से होता है। इस जीवाणु की वृद्धि की संभावना ऑक्सीजन के अभाव से अधिक होती है और अधिक मात्रा में आविष निर्मित होता है।

पशुओं में यह रोग पूंछ काटने, आपरेशन से बधिया करने, बाल काटते समय असावधानी की वजह से हो सकता है। नवजात बछड़ों के नाभि संक्रमण से या आपरेशन से बच्चा निकालने (cesarean) से भी टिटेनस हो सकता है। आमतौर पर पशुपालक जख्म पर रोगाणुनाशक दवा का प्रयोग न करके मिट्टी व राख इस्तेमाल करते है जो पशुओं में संक्रमण का कारण बन सकती है। बोझा ढोने वाले जानवरों में कंधों पर रस्सी की वजह से बने जख्म का संक्रमण भी टिटेनस का कारण हो सकता है।

अश्व में टिटेनस होने की संभावना अधिक होती है। दूषित सुई, जंग लगे लोहे की नुकीली तार व कील के गड़ने से यह जीवाणु शरीर में प्रवेश कर सकता है।

लक्षण

पशुओं में उद्‌भवन अवधि 3 दिन से 4 सप्ताह के बीच होती है। सभी पशुओं में टिटेनस के लक्षण लगभग एक समान होते हैं। बीमारी की शुरूआत मांसपेशियों में अकड़न से होती है जो धीरे–धीरे कंपन में बदल जाती है। अकड़न सिर से शुरू होके निचले शरीर में आती है। पशु के जबड़े जकड़ जाते हैं इसलिए इस बीमारी को लॉक जॉ (Lock jaw) भी कहा जाता है। कान सीधे सख्त खड़े हो जाते हैं। अकसर चेहरे की मांसपेशियां सबसे पहले प्रभावित होती हैं। पशुओं में आँख की तीसरी पलक दिखने लगती है। धीरे–धीरे मांसपेशियों की जकड़न आगे बढ़ती है और पीठ की मांसपेशियों में खिंचाव व दर्द होता है। पिछले पैरों की जकड़न की वजह से पशु को चलने फिरने में दिक्कत होती है, पशु की पूंछ में भी कड़ापन आ जाता है जिसकी वजह से पूंछ को हिलाने में दिक्कत होती है।

आरम्भ में पशु खाना पीना जारी रखता है किन्तु चेहरे की मांसपेशियों में अकड़न की वजह से पशु को चबाने व निगलने में दिक्कत होती है। मुंह से लगातार लार चलता रहता है। घोड़ों में गर्दन व पीठ की मांसपेशियों में अकड़न की वजह से जानवर की आकृति लकड़ी जैसी कठोर प्रतीत होती है। इस स्थिति को ''कठ घोड़ा'' (Saw horse) कहा जाता है। पशु में नाड़ी गति तथा श्वसन गति सामान्य से तेज हो जाती है। पशु हाँफ के सांस लेता है। पेट व आंत की मांसपेशियों में खिंचाव के कारण जानवर में अफारा एवं कब्ज की शिकायत मिलती है। धीरे–धीरे खिंचाव बढ़ने के कारण जानवर को चलने में अत्यधिक कठिनाई होती है तथा पशु गिरने की स्थिति में आ जाता है। गिरने के उपरान्त पशु का उठना एवं बैठना असंभव हो जाता है।

गर्दन व पूंछ वाला भाग ऊपर की मुड़ जाते हैं। पशु धनुष के आकार में प्रतीत होता है। इसलिए इस रोग को "धनुस्तंभ" भी कहा जाता है। शरीर का तापमान बढ़ने लगता है तथा पशु को अत्यधिक पसीना आने लगता है। उचित उपचार न मिलने पर पशु 5 से 10 दिन के अंदर मर जाता है।

उपचार

- पशु में टिटेनस के लक्षण जैसे की मांसपेशियों में अकड़न एवं कंपन, चलने–फिरने एवं निगलने में दिक्कत इत्यादि दिखाई देते ही तुरन्त पशु चिकित्सक से संपर्क करें।
- प्राथमिक उपचार में पशु के शरीर पर अगर कोई जख्म है तो उसको तुरन्त रोगाणुनाशक द्रव जैसे लाल दवाई या डिटॉल से साफ करें।
- टिटनेस रोग की चिकित्सा के 3 मुख्य सिद्वांत हैं–

  1. रोगाणुओं का नाश

  2. आविष (Exotoxin) को निष्प्रभावी करना

  3. मांसपेशियों की ऐंठन को नियंत्रित करना
- रोग के रोगाणु/जीवाणु को नष्ट करने के लिए एंटीबायोटिक का प्रयोग करना चाहिए। पेनीसीलिन का उपयोग लाभकारी होता है।
- जख्म को तुरंत रोगाणुनाशक दवा से साफ कर दें। विष के प्रभाव को खत्म करने के लिए 12 घन्टे के अंतराल पर जहररोधी टिका एंटीटिटेनस सीरम (A.T.S.) 3,00,000 I.U. के 3 टीके लगवाएं।
- मांसपेशियों में अकड़न को कम करने के लिए क्लोरपराजीन एवं डाइजेपाम दवा को पशु चिकित्सक की निगरानी में प्रयोग कर सकते हैं।
- अगर पशु खाने एवं पीने में असमर्थ है तो ग्लूकोस (DNS) की बोतल नस में लगवा लें।
- घोड़ों में किसी प्रकार का जख्म, लोहे की जंग लगी कील व तार आदि चुभने एवं किसी चीर–फाड़ जैसी गतिविधि होने पर टिटेनस टॉक्साइड (T.T.) का उपयोग अवश्य करें।

बचाव

- टीकाकरण द्वारा टिटेनस से बचाव संभव है। सक्रिय प्रतिरक्षा के लिए टिटेनस टॉक्साइड (Tetanus toxoid) नामक टीका लगवाएं। घोड़े के बच्चे में यह 3 से 4 माह की उम्र में लगाया जाता है। गर्भवती घोड़ी में इसका उपयोग अंतिम 6 सप्ताह के दौरान करना चाहिए। प्राथमिक टीकाकरण के लिए 4–8 महीने के अंतराल पर दो खुराक की आवश्यकता है। उसके बाद घोड़ों में प्रतिवर्ष एक टीका देना चाहिए।
- पशु के शरीर पर किसी भी प्रकार का जख्म होने पर तुरंत रोगाणुनाशक दवा से साफ करें।
- जख्म को मिट्टी एवं मल–मूत्र के सम्पर्क में आने से बचाएं।
- नवजात बछड़ों में नाभि के द्वारा संक्रमण फैलने से बचाएं। नाभि पर जख्म होने पर उसको लाल दवाई या बीटाडिन से साफ करते रहें तथा मिट्टी से दूर रखें। बीमार पशु को अंधेरे कमरे में रखना चाहिए जहां आवाज कम से कम पहुंचे। अत्यधिक आवाज से पशु में कंपन व बेचैनी बढ़ जाती है। घोड़ों में आवाज से बचाव के लिए कान में रूई का प्रयोग भी किया जाता है।
- मरे हुए पशु को तुरंत जमीन के अंदर गड्ढा खोद कर दबा दें या शव को जला देना चाहिए।
- रोगी पशु के प्रयोग किए हुए बिछावन, चारा व मिट्टी को भी नष्ट कर दें।

हिमीकृत वीर्य का वितरण एवं रख–रखाव

निलेश सिंधु[1], शरद कुमार[2] एवं राजेन्द्र यादव[3]
[1]शैक्षणिक पशु चिकित्सालय, [2]हिमीकृत वीर्य उत्पादन केन्द्र, जगाधरी,
[3]पशु औषधि विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)

वीर्य उत्पादन केन्द्र से वीर्यकोश या कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र तक हिमीकृत वीर्य के स्थानान्तरण या कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र में वीर्य के रख–रखाव के दौरान तापमान के उतार–चढ़ाव के कारण शुक्राणुओं के नष्ट होने या वीर्य के खराब होने का खतरा बना रहता है। विभिन्न केन्द्रों पर बार–बार वीर्य वितरण के दौरान कन्टेनर में तरल नाईट्रोजन की मात्रा कम होने या अन्य कारणों से भी हिमीकृत वीर्य खराब हो सकता है। अतः वीर्य वितरण तथा रख–रखाव के दौरान निम्न मुख्य बातों का ध्यान रखने से वीर्य को खराब होने से बचाया जा सकता हैः–

1. वीर्य वितरण से पहले नाईट्रोजन सिलेण्डरों को तरल नाईट्रोजन से भरा होना चाहिए।
2. वीर्य प्राप्ति के दौरान नाईट्रोजन सिलेण्डरों को पास–पास रखना चाहिए।
3. एक सिलेण्डर से दूसरे सिलेण्डर में वीर्य का स्थानान्तरण केवल नाईट्रोजन से भरे गोबलैट्स के द्वारा ही व जल्दी से जल्दी करना चाहिए तथा इस कार्य में पांच सैकेंड से ज्यादा का समय नहीं लगना चाहिए।
4. गिनती करने या स्थानान्तरण के लिए एक–एक स्ट्रॉ को हाथ से स्पर्श करने से बचना चाहिए।
5. विभिन्न गर्भाधान केन्द्रों की जरूरत के अनुसार ही हिमीकृत वीर्य को गोबलैटस में भरना चाहिए।
6. प्रत्येक गोबलैट तथा केनिस्टर में रखे वीर्य की सही पहचान अंकित होनी चाहिए।
7. सिलेण्डरों में नाइट्रोजन की मात्रा समय–समय पर जांच कर, उचित स्तर तक रखें।

हिमीकृत वीर्य की थाइंग (पिंघलाना):–

हिमीकृत वीर्य को गर्म करके ठोस अवस्था (हिमीकृत अवस्था) से तरल अवस्था में लाने की प्रक्रिया को थाइंग कहते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान हिमीकृत वीर्य को उचित तापमान वाले पानी में एक निश्चित समय के लिए डूबोया जाता है। कृत्रिम गर्भाधान के समय यह एक मुख्य व सर्वाधिक संवेदनशील प्रक्रिया है। यदि थाइंग सही तरीके से न की जाए या इस प्रक्रिया के दौरान मुख्य बातों का ध्यान न रखा जाए तो इस से शुक्राणुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। अतः थाइंग के समय निम्न मुख्य बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. एक समय में एक ही स्ट्रा की थाइंग करें।
2. स्ट्रा को कन्टेनर से निकालने के लिए हमेशा लम्बी चिमटी का प्रयोग करें तथा हाथ से कभी स्ट्रा न निकालें।
3. थाइंग के लिए स्वच्छ ताजे पानी का प्रयोग करें।
4. पानी की मात्रा इतनी रखें की पूरा स्ट्रा पानी में डूब जाए।
5. इस कार्य के लिए किसी थर्मस, बिजली चालित थाइंग यूनिट या चौड़े मुँह के बर्तन का प्रयोग किया जा सकता है।
6. थाइंग के लिए पानी का तापमान 35° सें. रखें तथा इसमें 50 से 60 सैंकेंड तक थाइंग करें।
7. केनिस्टर को नाइट्रोजन सिलेन्डर की गर्दन के निचले वाले हिस्से से उपर न उठाएं।
8. सिलेण्डर से निकालने के बाद स्ट्रा को हल्का से झटका दें तथा जल्द से जल्द थांइग वाले पानी में डालें।

9. थाइंग व गर्भाधान के बीच 15 मिनट से ज्यादा का समय न लें।

10. एक बार थाइंग करने के बाद स्ट्रॉ को वापिस हिमीकृत वीर्य कन्टेनर में कभी न रखें क्योंकि इसे दोबारा हिमीकृत नहीं किया जा सकता है।

11. थाइंग के लिए जेब, हवा, बर्फ, हथेली, ए.आई. गन आदि का प्रयोग न करें।

12. घर द्वार पर कृत्रिम गर्भाधान के लिए हिमीकृत वीर्य को तरल नाईट्रोजन कन्टेनर या थर्मश जिसमें 35° सें. तापमान का पानी हो, में ले कर लाएं तथा कभी भी बर्फ, ठण्डे पानी या जेब में न ले जाएं।

13. धूप, गर्मी, हवा, धूल, मिट्टी आदि से वीर्य को बचाकर रखें।

14. थाइंग के बाद स्ट्रा को अच्छी तरह से किसी साफ कपड़े या रूमाल से सुखा लें।

वीर्य वितरण, रख–रखाव तथा थाइंग के दौरान यदि उपरोक्त मुख्य बातों का ध्यान रखा जाए तो मादा जननांगों तक पहुंचने वाले वीर्य की गुणवत्ता अच्छी होगी तथा इससे मादा पशु के गर्भधारण की सम्भावना भी बढ़ जाएगी।

विस्तार शिक्षा निदेशालय की मुख्य सेवाएं

मुफ्त दूरभाष सेवा

1800-180-1184

समयः

सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार
10 बजे से 1 बजे तक

विस्तार शिक्षा ईकाइयाँ

1. पशु रोग खोज प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र, भिवानी।
2. पशु रोग खोज प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतक।
3. पशु रोग खोज प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़।
4. पशु रोग खोज प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र, जीन्द।
5. पशु रोग खोज प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बाला।
6. पशु रोग खोज प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र, करनाल।
7. पशु रोग खोज प्रयोगशाला, कृषि विज्ञान केन्द्र, सिरसा।

निदेशालय मुख्यालय :

न्यू ब्लॉक बिल्डिंग, पशु चिकित्सा महाविद्यालय,
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार-125004

प्रकाशक डॉ. बी.एस. श्योकन्द, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशलाय, लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ. देवेन्द्र सिंह के सम्पादन में डोरेक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, हिसार से लाला लाजपतराय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवाकर दिनांक 1 जनवरी, 2015 को प्रकाशित किया।